पूर्वांचल खेती

वर्ष : 30 सितम्बर 2020 अंक : 09

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

वर्ष 30 | सितम्बर, 2020 | अंक 09

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ए. पी. राव

निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

मो. नं. 9450938866

सम्पादक मण्डल

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

तोरिया की वैज्ञानिक खेती 01
–सौरभ वर्मा, एस.के. वर्मा एवं ए.पी. राव

मटर उत्पादन प्रौद्योगिकी 03
–डॉ. राम प्रताप सिंह एवं अभिनीत

पत्ता गोभी की आधुनिक वैज्ञानिक खेती 08
–रवि प्रताप सिंह एवं अमर नाथ सिंह

बटन मशरूम की वैज्ञानिक खेती 10
–अजीत सिंह वत्स, एस.एन.एस. चौहान एवं लाल पंकज कुमार सिंह

कृषि–वानिकी अपनायें अतिरिक्त लाभ पायें 14
–डा0 एस0 के0 वर्मा एवं डा0 ओ0पी0 राव

सहजनः स्वास्थ्य के लिए वरदान 16
–अनु सिंह एवं ए0पी0 राव

भारतीय मृदा तथा उनमे उगाई जाने वाली फसलों का परिचय 19
–डॉ० आर० के० पाठक, डॉ० रविशंकर सिंह, राघवेंद्र सिंह एवं देवेश पाठक

किसान भाई बीज खरीदें ध्यान से 21
–डॉ0 समीर कुमार पाण्डेय, डॉ0 सत्यपाल सिंह एवं 'डॉ0 ए0डी0 गौतम

पर्यावरण संरक्षण आज की आवश्यकता 23
–डॉ0 पूनम सिंह

कोरोना महामारी में बने रहें स्वस्थ 27
–पूजा, साधना सिंह, दीप्ति गिरी, रविन्द्र सिंह एवं अशोक कुमार सिंह

गौपालन जैविक खेती का सुदृढ़ आधार 29
–डॉ. एस.के. सिंह, डॉ. एस.एन. लाल, डॉ. एन. रघुवंशी और डॉ. ए.के. सिंह

पशुओं में दूध उतारने हेतु ऑक्सीटोसिन का प्रयोग हानिकारक 31
–डॉ. एस. एन. लाल, डॉ. एस. के. सिंह

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें 33

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के 35

बॉक्स सूचनाएं

पूर्वांचल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये 32

कृषि लागत कम करने हेतु सुझाव 32

लेखकों से अनुरोध 34

संतुलित उर्वरक का प्रयोग 34

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	वाराणसी	डॉ. संजीत कुमार	9837839411	05542–248019
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	9450547719	05498–258201
3.	बलिया	डॉ. रवि प्रकाश मौर्य	9453148303	–
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	9415188020	05278–254522
5.	मऊ	डॉ. एस. एन. सिंह चौहान	–	0547–2536240
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	9458362153	0541–2260595
7.	बहराइच	डॉ. एम. पी. सिंह	9415172725	05252–236650
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	9415155818	–
9.	आज़मगढ़	डॉ. के. एम. सिंह	9307015439	–
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	9455501727	
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	9984369526	–
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. एल. सी. वर्मा	7376163318	05541–241047
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	–
15.	बलरामपुर	डॉ. वी. पी. सिंह	9839420165	–
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	9918622745	–
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	9415039117	–
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	9838952621	–
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. विनायक शाही	8755011086	–
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. ओम प्रकाश	9452489954	–
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	9450885913	–
22.	अमहित–जौनपुर	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	–	–
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	9411320383	–

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. शशांक शेखर सिंह	–	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	श्रीमती सरिता श्रीवास्तव	9415419712	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. एस. के. सिंह	9450164714	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. तेजेन्द्र कुमार	9415560503	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. गजेन्द्र सिंह	7379576412	0548–223690

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

बदलते परिवेश में कृषि को परम्परागत तकनीक से अलग हटकर हमें कम लागत अधिक उत्पादन के साथ–साथ कृषि उत्पादों की पोषक गुणवत्ता को भी मानव स्वास्थ्य के नजरिये से बनाये रखने के लिए चिंता करनी होगी। लगातार प्राकृतिक संसाधनों का सिमटना, बदलता मौसम व भौगोलिक परिस्थितियाँ जिन्हें ध्यान में रखकर निरन्तर नवीनतम तकनीकों व किस्मों का विकास करने पर कृषि वैज्ञानिक गंभीर प्रयास कर रहे हैं। आवश्यकता है विकसित तकनीकों व सुझावों को किसान भाईयों द्वारा अपनाये जाने की।

प्रस्तुत अंक में उपरोक्त के दृष्टिगत तथा किसानों की सकल कृषि आय में बढ़ोत्तरी के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण विषयों पर लेख प्रस्तुत हैं। आशा है हमारे किसान भाई व प्रसार कार्यकर्ता इन लेखों का लाभ उठा कर कृषि समूह को लाभ पहुँचाने का प्रयास करेंगे।

(ए.पी. राव)

तोरिया की वैज्ञानिक खेती

सौरभ वर्मा, एस.के. वर्मा एवं ए.पी. राव*

देश में खाद्य तेलों की आपूर्ति के लिए तोरिया जैसी कम समय में पकने वाली तिलहनी फसल को प्रोत्साहित करना जरूरी है। तोरिया/लाही रबी की तिलहनी फसलों में सबसे कम समय में पकने वाली और सबसे पहले बोयी जाने वाली फसल है। यह फसल आमतौर पर उत्तर भारत के सभी क्षेत्रों में उगाई जाती है। तोरिया की कुछ किस्में 85 से 90 दिन में पककर तैयार हो जाती है। जो खेत अगस्त के आखिरी में ज्वार, बाजरा आदि चारे वाली फसलों व सब्जियों के बाद खाली हो जाते हैं, उनमें किसान नवीनतम तकनीक से तोरिया फसल उगाकर खाली खेतों का सदुपयोग करके अतिरिक्त आय कमा सकते हैं। तोरिया की खेती खरीफ एवं रबी फसलों के मध्य अंतरवर्ती (कैच क्रॉप) फसल के रूप में उगा लिया जाय तो खाद्यान्न एवं खाद्य तेल दोनों की आवश्यकतायें आसानी से पूरी की जा सकती हैं।

तोरिया में 42 से 45 प्रतिशत तक तेल होता है और इसकी खली पशुओं के आहार के रूप में काम में लाई जाती है। उन्नत विधियां अपनाने पर तोरिया/लाही के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इस लेख में तोरिया/लाही की उन्नत तकनीक से खेती कैसे करें, का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

खेत की तैयारी

खरीफ की अगेती फसल की कटाई के पश्चात नमी की कमी की दशा में पलेवा करने के बाद उपयुक्त ओट आने पर पहली जुताई मिट्टी पलट हल से तथा दो जुताइयाँ कल्टीवेटर से करके पाटा लगाकर मिट्टी भुरभुरी कर लेना चाहिए। चूँकि तोरिया का बीज बहुत छोटा होता है, अतः मिट्टी का भुरभुरा होना आवश्यक है। बरानी क्षेत्रों में मृदा नमी संरक्षित करने हेतु तोरिया की बुआई जीरो टिल सीड ड्रिल मशीन (कुछ परिवर्तन करके) द्वारा भी की जा सकती है।

बीज एवं बुआई प्रबन्धन

तोरिया की बुआई सितम्बर माह में वर्षा के समाप्त होने पर 30 से0मी0 की दूरी पर बने 3–4 से0मी0 गहरे कूँड़ों में देशी हल के पीछे की जाती है। विगत वर्षों में बरसात होने और मौसमी परिवर्तन के कारण राष्ट्रीय स्तर के वैज्ञानिकों ने तोरिया की बुआई 10 अक्तूबर तक करने की सलाह किसानों को दी है। 10 अक्तूबर के बाद अर्थात विलम्ब से बुआई करने पर पैदावार में एक कुंतल प्रति हेक्टेयर प्रति सप्ताह तक हानि हो सकती है।

एक हेक्टेयर की बुआई हेतु 4–5 किग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है। प्रति वर्ग मीटर में 25–30 पौध संख्या सुनिश्चित की जानी चाहिए। बुआई के पूर्व बीज को 2.5 ग्राम थीरम या मैंकोजेब 3.0 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से उपचारित कर लें, इससे बीज जनित रोगों की सम्भावना कम हो जाती है। मेटालेक्सिल 1.5 ग्राम प्रति किग्रा0 बीज की दर से शोधन करने पर प्रारम्भिक अवस्था में सफेद गेरुई एवं

सारिणी–1
उन्नतशील प्रजातियॉ

प्रजाति	उत्पादन क्षमता (कु0/हे0)	पकने की अवधि (दिन में)	उपयुक्त क्षेत्र
टा0 9 (काली)	12–15	90–95	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश
टा0 36 (पीली)	10–12	95–100	मध्य उत्तर प्रदेश
भवानी (टी0के0 8401)	8–10	75–80	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश
पी0टी0 303	15–18	90–95	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश
पी0टी0 30	14–16	90–95	उत्तर प्रदेश तराई क्षेत्र
पी0टी0 507	14–18	85–90	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश
तपेश्वरी	14–15	90–91	सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश

*कृषि विज्ञान केन्द्र सुलतानपुर, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्व विद्यालय कुमारगंज, अयोध्या–224229

तुलासिता रोग की रोकथाम हो जाती है। तोरिया के बाद गेहूँ की फसल लेने के लिए इनकी बुआई सितम्बर के प्रथम पखवारे में समय मिलते अवश्य कर लेनी चाहिए परन्तु भवानी प्रजाति की बुआई सितम्बर के द्वितीय पखवारे में ही करें।

पोषक तत्व प्रबन्धन

खेत तैयार करते समय यदि उपलब्ध हो, सड़ी गोबर की खाद 7.5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। यदि खरीफ फसल में देसी खाद का प्रयोग किया गया है तो तोरिया की खेती में इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। असिंचित दशा में तोरिया को 50 किग्रा0 नत्रजन, 30 किग्रा0 फास्फोरस तथा 30 किग्रा0 पोटाश एवं सिंचित दशा में 100 किग्रा0 नत्रजन, 50 किग्रा0 फास्फोरस तथा 50 किग्रा0 पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। फास्फोरस का प्रयोग सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में अधिक लाभकारी होता है क्योंकि इसमें 12 प्रतिशत गंधक की भी उपलब्धता हो जाती है।

असिंचित दशा में सम्पूर्ण उर्वरक की मात्रा बुआई के समय बीज के नीचे प्रयोग करें। सिंचित दशा में नत्रजन की आधी एवं फास्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा को बुआई के समय नाई या चोगे द्वारा बीज से 2–3 से0मी0 नीचे प्रयोग करें। नत्रजन की शेष मात्रा पहली सिंचाई के बाद (बुआई के 25–30 दिन बाद) टाप ड्रेसिंग कर देना चाहिए।

सिंचाई एवं अन्तःशस्य क्रियायें

तोरिया की जड़े अधिक गहरी नहीं होती है। अतः सिंचित क्षेत्रो में दो बार सिंचाई देने पर आशातीत पैदावार प्राप्त होती है। पहली सिंचाई 30 से 35 दिन बाद फूल आने से पहले करें, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार दूसरी सिंचाई 70 से 80 दिन बाद करें।

पौधे की संख्या अधिक हो तो बुआई के 20 से 25 दिन बाद निराई के साथ छंटाई कर खरपतवार निकाल दें तथा पौधे से पौधे की दूरी 8 से 10 सेन्टीमीटर कर दें। सिंचाई के बाद गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट हो जायेगें और फसल की बढवार अच्छी होगी।

खर–पतवार प्रबन्धन

तोरिया का प्रक्षेत्र 45 दिन तक खरपतवार मुक्त रहना चाहिए, अतः खरपतवार के लिए क्रान्तिक अवस्था 45 दिन तक रहती है। यदि 45 दिन तक खरपतवारों का नियंत्रण न किया गया हो तो उत्पादन में 20 से 70 प्रतिशत का नुकसान खरपतवारों की सघनता के अनुसार हो सकता है। इस नुकसान को रोकने हेतु यांत्रिक अथवा रासायनिक विधि का प्रयोग किया जा सकता है। मजदूरों की उपलब्धता न होने पर खरपतवार के नियंत्रण हेतु बुआई के पूर्व खेत तैयार करते समय फ्लूक्लोरोलिन की 1.5 किग्रा0 मात्रा अथवा बुआई के बाद 0.75 लीटर मात्रा, अथवा पेन्डीमेथिलीन (30 प्रतिशत) की 3.3 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के दूसरे दिन (जमाव के पूर्व) छिड़काव कर देना चाहिए। खड़ी फसल में आइसोप्रोट्यूरान 1.0 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करके संकरे खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। कुछ प्रक्षेत्रों एवं प्रजातियों में आइसोप्रोट्यूरान के प्रयोग से फसलों को नुकसान भी देखने को प्राप्त हुआ है।

यांत्रिक विधि द्वारा तोरिया की निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण दो बार, बुआई के 15–20 दिन के अन्दर तथा 40–45 दिन पर करें। बुआई के 15–20 दिन के अन्दर घने पौधों को निकाल दे और पौधों की आपसी दूरी 15 सेमी रखें। दूसरी निकाई सिंचाई के दो हफ्ते बाद बुआई के 45 दिन की अवस्था पर करें।

फसल कटाई एवं भण्डारण

तोरिया की फसल लगभग 85–95 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। जब फसल की लगभग 75 प्रतिशत फलियाँ सुनहरे रंग की हो जाय तब फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। इसका तोरिया की उपज एवं तेलांश पर कोई भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। कटाई में विलम्ब होने पर फलियों के फटने का डर बना रहता है। तत्पश्चात कटे फसल को खलिहान में दो दिन रखने के बाद सुखा कर लकड़ी के डण्डे की सहायता से अलग कर लेना चाहिए। ●

मटर उत्पादन प्रौद्योगिकी

डॉ. राम प्रताप सिंह एवं अभिनीत

मटर भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण दलहनी एवं सब्जी की फसल है और प्राचीनतम मानव खाद्यों में से एक है। यह शीतल जलवायु वाले स्थानों में अच्छी तरह फलती–फूलती है और इसलिये विश्व के लगभग सभी शीतोष्ण क्षेत्रों में उगाई जाती है। इसकी खेती भारत में मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, आसाम एवं उड़ीसा में की जाती है। यह सहजीवता द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन यौगिकीकृत करने की जबरदस्त क्षमता रखती है। सबसे अधिक मटर का क्षेत्रफल (477.6 हजार हैक्टेयर) एवं उत्पादन (550.5 हजार टन) उत्तर प्रदेश में है जो देश के कुल क्षेत्रफल एवं उत्पादन का क्रमशः 61.6 एवं 79.7 प्रतिशत है। दूसरा नम्बर मध्य प्रदेश का है जहॉ मटर का क्षेत्र 183. 1 हजार हैक्टेयर एवं उत्पादन 63.9 हजार टन है। इसकी औसत उपज राजस्थान में 2076 किलोग्राम/हैक्टेयर एवं उत्तर प्रदेश में 1153 किलोग्राम/हैक्टेयर है।

भूमि का चुनाव एवं उसकी तैयारी

मटर हेतु दोमट तथा हल्की दोमट भूमि उपयुक्त होती है। क्षारीय एवं अम्लीय भूमि में मटर की खेती नही होती। खेत की तैयारी के लिये खरीफ फसल काटने के बाद एक गहरी जुताई करना चाहिये। बाद में दो तीन जुताई कल्टीवेटर से करके अच्छी तरह से पाटा चलाकर मिट्टी को भुर–भुरी कर लेते है, ऐसा करने से खेत में नमीं संरक्षित रहती है। अगर खेत में नमी कम है तो पलेवा देने के बाद खेत तैयार करना चाहिये।

बीज दर, बुवाई का समय व तरीका

बीज जमने के लिये न्यूनतम तथा अधिकतम तापमान क्रमशः 4 तथा 24 सेंटीग्रेट है। छोटे दाने वाली प्रजाति का 80–85 किलोग्राम तथा बौनी प्रजाति एवं मध्य व बड़े दाने वाली प्रजाति का 100–125 किलोग्राम/हैक्टेयर बीज लगता है। क्षेत्र के लिये संस्तुति की गई प्रजाति का प्रमाणित, स्वस्थ एवं शुद्ध बीज का प्रयोग करना चाहिये।

उपयुक्त समय पर बुवाई करने से पैदावार अधिक होती है और रोगों अथवा कीटों का प्रकोप कम होता है। पछेती बुवाई में पादप वृद्धि घट जाती है और पुष्पन ठीक नही होता। उत्तर भारत में मटर की खेती के लिये उपयुक्त समय अक्टूबर के मध्य से नवम्बर के मध्य तक उपयुक्त पाया गया है तथा मध्य भारत में अक्टूबर के पहले और दूसरे पखवाड़े में बोया जाता है। बुवाई सीड–ड्रिल अथवा देशी हल के कूँड़ में बीज डालकर की जाती है, बुवाई के बाद पाटा चलाना अति आवश्यक है। सामान्य प्रजातियों को 30 सेमी की दूरी पर तथा बौनी प्रजातियों को 25 सेमी की दूरी पर पंक्तियों में बोना ठीक रहता है।

सारिणी–1

तालिका–1 भारत के विभिन्न राज्यों के लिये संस्तुत मटर की लोकप्रिय उन्नतशील प्रजातियाँ।

प्रजाति का नाम	पकने का समय (दिनों में)	उपज (कि0ग्रा0/है0)	विशेषतायें	रोग रोधिता/सहन शीलता	अनुकूल क्षेत्र
रचना (के.पी.एम.आर.–10)	125–130	2000	लम्बे पौधे तथा मक्खन रंग के गोल बड़े बीज	लम्बे पौधे तथा मक्खन रंग के गोल बड़े बीज	मटर उगाने वाले सभी क्षेत्र
जे.पी.– 179	115–125	2000	मध्यम लम्बे पौधे	चूर्णी कवक, उकठा एवं भण्डारण कीट	मध्य प्रदेश
जे.पी. – 885	120–140	2100	लम्बे पौधे तथा मक्खन रंग के गाोल बड़े बीज	चूर्णी कवक,	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के भाग महाराष्ट्र, राजस्थान
अम्बिका (एम. 9102)	100–125	1500–2000	लम्बे पौधे	चूर्णी कवक,	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के भाग महाराष्ट्र, राजस्थान

शस्य वैज्ञानिक एवं शोध छात्र, शस्य विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या–224229

जे.पी.– 4 (जे. एम. 6)	120	2500–3000	–	चूर्णी कवक	मध्य प्रदेश
के.पी.एम.आर.– 400	105–115	2000	बौने पौधे	चूर्णी कवक	मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश के भाग महाराष्ट्र, राजस्थान
मालवीय मटर– 2 (एच.यू.पी. 12)	100–140	2000–2500	लम्बे पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक,	उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, बिहार. झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, आसाम, उत्तरान्चल
मालवीय मटर– 15 (एच.यू.डी.पी. 15)	120–130	2350	पत्ती रहित बौने पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक, गेरूआ	उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, बिहार. झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, आसाम, उत्तरान्चल
पंत पी.– 5	130–150	2000	लम्बे पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तरांचल, हरियाणा, पंजाब
अपर्णा (एच.एफ.पी.– 4)	120–130	2000	पत्ती रहित बौने पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
अलंकार (डी.एम.आर.– 7)	115–135	2350	लम्बे पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश, हरियाणा,मध्य प्रदेश, पंजाब
उत्तरा (एच.एफ.पी.– 8909)	120–140	2230	पत्ती रहित बौने पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, बिहार. झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, आसाम, उत्तरान्चल, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
पूसा प्रभात (डी.डी.आर.– 23)	105–115	2000	बौने पौधे	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, बिहार, पश्चिम बंगाल, आसाम, उत्तरांचल, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
शिखा	130–140	2040	टेण्डूलर, लम्बे पौधे, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
के.पी.एम.आर.– 522	120–140	2290	बौने पौधे	चूर्णी कवक	उत्तरान्चल, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान
अर्किल	60–110	1200–1300	शीघ्र पकने वाली जाति	संबेदनशील	मटर उगााने वाले अधिकांश क्षेत्र
सपना	120–130	1800	बौने, बड़े दाने	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश
के.एफ.पी.डी.–400	130–135	3000–3200	बौने पौधे, दाने सफेद गोल	चूर्णी कवक	उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों के लिये
स्वाति (के.एफ. पी.डी.– 24)	110–125	2200	टेण्डूलर, बौने पौधे	चूर्णी कवक, गेरूआ, पत्ती सुरंग	चूर्णी कवक, गेरूआ, पत्ती सुरंग
आदर्श (आई.पी.एफ.–99–25)	110–120	2500–3000	ऊॅचा पौधा	चूर्णिल आसिता अवरोधी	मध्यवर्ती क्षेत्रों के लिये
एच.एफ.पी.–9426	130–135	2500–3000	ऊॅचा पौधा	चूर्णिल आसिता अवरोधी	हरियाणा एवं देश के उत्तर के पहाड़ी क्षेत्रों के लिये
हरियाल (एच.एफ.पी.–9907)	125–130	2500–3000	बौना पौधा	चूर्णिल आसिता अवरोधी एवं किट्ट प्रतिरोधी	उत्तर पश्चिम के मैदानी क्षेत्रों के लिये
विकास (आई.पी.एफ.–99–13)	100–105	2200–2500	–	–	उत्तर प्रदेश के बुन्देल खण्ड क्षेत्र हेतु

प्रजाति का चयन एवं उन्नतशील प्रजातियाँ

अलग–अलग राज्यों के लिये अलग–अलग सुधरी हुई उन्नत रोग निरोधक प्रजातियों की संस्तुति की गई है जो अधिक उत्पादन देने वाली हैं, इनमें से कुछ लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण प्रजातियों के बारे में प्रमुख जानकारी तालिका–1 में दी गई है तद्नुसार चयन करें।

बीजोपचार

बीज को बोने के पूर्व फँफूदनाशक दवा थायरम कार्बेन्डाजिम के 2:1 अनुपात के मिश्रण से उपचारित करें। मिश्रण की मात्रा 3 ग्राम /किलोग्राम बीज की दर से लें। जड़ों में ग्रन्थियों का बनना अंकुरण के 10 से 12 दिन बाद प्रारम्भ हो जाता है और अच्छी तरह ग्रन्थिकायों का निर्माण होने पर फसल में वायुमण्डल से नत्रजन का यौगिकीकरण इनमें उपस्थित जीवाणु (राइजोबियम) द्वारा होता है। खेत में राइजोबियम जीवाणु की संख्या पहले से पर्याप्त होने पर पौधों की जड़ ग्रन्थिकाओं का निर्माण अच्छा होता है और फसल बोते समय बीज को जीवाणु शोधन की आवश्यकता नही पड़ती। अगर खेत में पहली बार मटर की खेती की जा रही हो तो बीज को मटर के राइजोबियम कल्चर 5 ग्राम एवं पी.एस.बी. कल्चर 5 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। बुवाई के पूर्व उपचारित बीज को छाया में सुखा लेना चाहिये।

उर्वरकों का प्रयोग

मिट्टी के पोषक तत्वों के स्तर को जानकर ही उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण किया जाना उपयुक्त रहता है। न्यून उर्वरता वाली मृदाओं में 15 से 20 किलोग्राम नत्रजन तथा 40 से 50 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है जो 100 किलोग्राम डी.ए.पी. से प्राप्त हो जाता है। बौनी जातियों के लिये नत्रजन की मात्रा 30–40 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर दें। जहाँ गंधक और पोटाश की कमी हो वहाँ प्रत्येक की 20 किलोग्राम मात्रा 200 किलोग्राम जिप्सम एवं 33 किलोग्राम म्यूरेट आफ पोटाश प्रति हैक्टेयर के रूप में देनी चाहिये। अगर सुपर फास्फेट का प्रयोग किया है तो गंधक अलग से देने की आवश्यकता नही होती। उर्वरकों की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई से पहले मिट्टी में मिलाकर अथवा बुवाई के समय कूँडों में डालना चाहिये।

सिंचाई

बुवाई के समय मृदा में पर्याप्त नमी होना चाहिये यदि नमी की कमी है तो बुवाई से पूर्व सिंचाई करना आवश्यक है। खेत में बुवाई क समय नमी का स्तर ठीक होने पर अंकुरण अच्छा होता है और फसल की स्थापना हो जाती है और आगामी जाड़े की बरसात से फसल की पानी की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। जाड़े की बरसात नही होने पर फसल को बुवाई के 45 दिन बाद हल्की सिंचाई कर देने से पर्याप्त उपज वृद्धि होती है। दूसरी सिंचाई आवश्यकता होने पर बुवाई के 75 दिन बाद की जा सकती है अर्थात यदि सर्दियों में वर्षा न हो तो एक सिंचाई फूल आने के पहले करनी चाहिये तथा दूसरी सिंचाई दाना भरते समय देना लाभप्रद रहता है। सिंचाई छिड़काव द्वारा करना अधिक लाभप्रद होता है।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण की किस्मों, सघनता तथा खरपतवार की अवधि के अनुसार इनके द्वारा फसल पर क्षति की मात्रा निर्भर करती है। बुवाई के 25–30 दिन बाद प्रथम निराई खुरपी अथवा हैण्ड हो से करनी चाहिये तथा दूसरी निराई–गुड़ाई आवश्यकतानुसार 45–50 दिन बाद कर सकते हैं जिससे खरपतवार नष्ट होने के साथ ही भूमि में वायु संचार भी बढ़ता है जो पौधों की वृद्धि के लिये आवश्यक होता है। अधिक खरपतवार वाले क्षेत्रों में इनकी रोकथाम के लिये रसायनों के छिड़काव की आवश्यकता होती है। फ्लूक्लोरोलिन 1.0 किग्रा0 सक्रिय अवयव/हक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर बोने से पूर्व मिट्टी में मिला दें अथवा पेंडीमेथेलीन 30 ई0सी0 की 3 लीटर मात्रा/हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोल बना कर बुवाई के तुरन्त बाद छिड़काव करें।

सस्यक्रम पद्धति एवं सहफसली खेती

मटर की खेती सामान्यतः खरीफ फसलों जैसे मक्का, ज्वार, बाजरा, कपास या अगेती धान आदि के काटने के बाद रबी के मौसम में की जाती हैं। कभी कभी इसे उर्द एवं मूँग काटने के बाद भी बोया जाता है। ज्यादातर मटर की खेती एकल फसल के रूप में की जाती है, लेकिन कभी–कभी इसकी मिश्रित खेती गेहूँ, जौ, चना, सरसों या जई के साथ की जाती हैं। उत्तर

प्रदेश में शरद कालीन गन्ने में सब्जी मटर की मिलवा खेती काफी प्रचलित है। सरसों तथा जई के साथ मिलाकर मटर की खेती चारे के लिये की जाती है।

देश के विभिन्न भागों में मटर को निम्न फसल चक्रों एवं मिश्रित खेती के रूप में उगाया जाता है।

मिश्रित खेती	फसल चक्र
गन्ना+मटर	मक्का–मटर
जौ+मटर	ज्वार (चारा)–मटर
गेहूँ+मटर	बाजरा–मटर
मटर+सरसों	धान–मटर
जई+मटर+सरसों	उर्द–मटर
आदि	मूँग–मटर
	कपास–मटर
	आदि।

रोग नियंत्रण

मटर में अनेकों कवक रोगों से फसल को नुकसान होता है, उनमें चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू), किट्ट रोग (रस्ट), मृदुल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू), तना विगलन (स्टेम राट) और पीथियम बीज एवं मूल विगलन मुख्य है।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्ड्यू)

यह मटर का भयंकर रोग है। यह इरीसाइफी पोलीगोनाई नामक कवक से होता है। जनवरी–फरवरी में इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। रोग के लक्षण पत्तियों के ऊपर सफेद चूर्णी धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं जो धीरे–धीरे फैल कर पूरे पौधे पर छा जाते हैं और ऐसा लगता है जैसे पौधे पर पाउडर छिड़क दिया गया हो। बाद में प्रभावित पत्तियाँ पीली होकर मुड़ जाती हैं और अंत में सूखकर गिर जाती हैं।

किट्ट रोग (रस्ट)

किट्ट रोग का प्रकोप उत्तर भारत से अधिक आद्रता और सामान्य तापमान की दशाओं में इस रोग के लक्षण शीघ्रता से फैलते हैं। इस रोग से भी पौधों के भूमि की सतह से ऊपर के सभी भागों पर फरवरी–मार्च में एक विशेष प्रकार के लाल से भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। यह रोग यूरामाइसिस फैबी नामक कवक से फैलता है।

तुलासिता / मृदुल आसिता (डाउनी मिल्ड्यू):

यह रोग परनोस्पोरा पाइसाई नामक कवक से होता है। इस रोग में पत्तियों की ऊपरी सतह पर पीले रंग के धब्बे बनते हैं जिनके नीचे की तरफ रूई के समान सफेद फफूँद की वृद्धि दिखाई देती है। बाद में पत्तियाँ सिकुड़ कर मरने लगती हैं।

तना विगलन रोग

तना विगलन रोग राइजोक्टोनियां सोलेनाई नामक कवक द्वारा फैलता है इस रोग के धब्बे तने पर विक्षत लम्बे बैगनी काले रंग के धब्बे तथा पत्तियों पर गहरे भूरे किनारे वाले गोल कत्थई से भूरे रंग के धब्बे देखे जा सकते हैं।

बीज एवं मूल विगलन रोग

बीज एवं मूल विगलन रोग पीथियम जाति के कवक द्वारा फैलता है। इस रोग से बीज और पौध प्रारम्भ में क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और जड़ें गल जाती हैं।

रोकथाम

- बीज जनित एवं मृदा जनित रोगों जैसे पीथियम बीज एवं मूल विगलन तथा विगलन रोगों की रोकथाम के लिये थीरम 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम/किलोग्राम बीज की दर से बोने से पूर्व शोधन कर लें, यह कार्य कल्चर द्वारा बीज उपचारित करने से पूर्व करें।
- मटर की अनेकों सभी प्रजातियाँ चूर्णिल आसिता रोग के प्रति अवरोधी हैं इनमें से कुछ प्रजातियाँ किट्ट रोग के प्रति सहनशील पाई गई हैं, अतः इन प्रजातियों को उगाना उचित होगा (तालिका–1)।
- पौधे के जमीन से ऊपर के भागों पर लगने वाले कवक रोगों की रोकथाम के लिये हैक्सकोने अथवा प्रोपीकोनेजोल का 0.1 प्रतिशत घोल 700 से 800 लीटर पानी में घोल बनाकर 2–3 छिड़काव आवश्यकतानुसार करना चाहिये।

उकठा रोग (विल्ट)

उकठा रोग फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम एफ स्पेसीजपिसी से होता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पौधे की पत्तियाँ नीचे से ऊपर की ओर पीली पड़ने लगती हैं और बाद में जड़ें बदरंग होकर पौधा सूख

जाता है। प्रभावित पौधे खेत में छोटे–छोट क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। **रोकथाम के लियेः–**

- खेत की ग्रीष्मकालीन जुताई करें।
- बीज को फफूँदनाशक दवा से उपचारित करें।
- खेत तैयार करते समय पूर्व फसल अवशेषों को निकालकर नष्ट कर दें।
- तीन–चार साल का फसलचक्र अपनायें जिसमें मटर न हो।

कीट नियंत्रण

मटर की फसल में हानि पहुँचाने वाले कीटों में तना मक्खी या पी स्टैमफ्लाई (मेंलनएग्रोमाइजा फैजियोलाई), पर्ण खनक या लीफ माइनर (फाइटोमाइजा एट्रीकोरनिस), अर्द्धकुंडलक या पी सेमीलूपर (थायसैनोप्लूसिया ओरिचलसिया) माहू या एफिड (एकिरथोसाइफोन पाइसम) और फलीबेधक (यूकाइसाप्स नेत्रस हेलिकोवरपा आर्मिजेरा, स्पोडोपटेरा लिटूरा) आते हैं। इनमें तना मक्खी एवं पर्ण खनक प्रमुख कीट हैं और अन्य सभी गौझा कीटों में आते हैं।

तना बेधक मक्खी

तना मक्खी मटर की फसल को काफी बड़े क्षेत्रफल में नुकसान पहुँचाती हैं। इसकी सूड़ी (मैगट) तने के आधार पर प्रौढ़ के निकलने के लिये छोटे छिद्र बनाती है, जैसे पौधे जमकर भूमि के ऊपर आते हैं इस कीट का आक्रमण शुरू हो जाता है। पौधे बौने हो जाते हैं और पीले पड़कर सूख जाते हैं।

पत्ती सुरंग कीट

यह कीट फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ही नुकसान करना शुरू कर देती है। पर्ण खनक की प्रौढ़ मक्खी पत्ती के अन्दर अण्डे देती है। डिम्भक पत्तियों के अन्दर टेढ़ी–मेढ़ी सुरंग/रास्ते बनाती हैं जिसके अन्दर ये खाते रहते हैं। पत्तियाँ बाद में सूखकर गिर जाती हैं। डिम्भक और कोशित (प्यूपा) पत्तियों में दिखाई देते हैं।

रोकथाम

- कीटों की रोकथाम के लिये गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहियें जिससे जमीन में रहने वाले कीटों की अवस्था नष्ट हो जाती है।
- जिन क्षेत्रों में तना मक्खी का प्रकोप ज्यादा होता है वहाँ फसल की बुवाई मध्य नवम्बर के आस–पास करनी चाहिये।
- बीज को इमीडाक्लोप्रीड 3 मिलीलीटर अथवा थायोमेथेक्जाम 2 ग्राम अथवा डायमेथोएट अथवा क्लोरपाइरीफास 8 मिलीलीटर/किलोग्राम बीज की दर से शोधित करके बोना चाहिये।
- चिपकने तथा पीलें रंग के प्रपंच लगाने से माहूँ तथा पत्ती खनक कीटों के बारे में पता चलता है।
- चना फली बेधक के लिये फेरोमोन प्रपंच 5–6 प्रति हैक्टेयर लगाना चाहिये, यदि 5–6 वयस्क कीट/फेरोमोन प्रपंच, 2–3 दिन लगातार दिखे अथवा एक सूड़ी प्रति पौधा फूल आने/फली बनने की अवस्था में दिखे तो एन.पी.वी. 250 एल.ई. प्रति हैक्टेयर अथवा वी.टी.–1 किलोग्राम/हेक्टेयर अथवा निबौली सत 5 प्रतिशत की दर से फसल पर छिड़काव करें। आवश्यकतानुसार प्रोफेनोफास 0.05 प्रतिशत या अन्य उपयुक्त रसायन का 500–600 लीटर पानी में घोल बनाकर फसल के ऊपर दूसरा छिड़काव करें।

फसल कटाई, गहाई एवं भण्डारण

हरी फलियों के लिये बोई गई फसल जनवरी–फरवरी में फलियाँ देती है। फलियों को 10–12 दिन के अन्तराल पर 3–4 बार तोड़ना चाहिये। फलियाँ पूर्ण रूप से भरी होना चाहिये।

दाने के लिये बोई गई फसल मार्च/अप्रैल में पक कर तैयार हो जाती है। अच्छी तरह पकी फसल को कटाई के बाद खलिहान में पीटकर या बैलों से या ट्रैक्टर से मड़ाई करके दाने निकाल लेते हैं।

मटर की अकेली फसल के दाने की पैदावार लगभग 20 से 25 कुन्तल प्रति हैक्टेयर होती है। भण्डारण के पहले दानों को अच्छी प्रकार सुखा लेना चाहिये। भण्डारण में कीटों के नुकसान से बचने के लिये ईडीबी एम्प्यूल्स किसी जानकार की देख रेख में प्रयोग करना चाहिये।●

पत्ता गोभी की आधुनिक वैज्ञानिक खेती

रवि प्रताप सिंह* एवं अमर नाथ सिंह**

पत्ता गोभी जैसे की नाम से मालूम होता है की यह एक पत्तेदार सब्जी है। जो हमारे लिए बहुत उपयोगी होती है। इसे बंद गोभी के नाम से भी जाना जाता है। भारत में आने के बाद इस सब्जी का उत्पादन सारे देश में किया जाने लगा। लेकिन इसकी उत्पत्ति भूमध्यसागरीय क्षेत्र से हुई है। इस सब्जी को सबसे पहले पुर्तगालियों के द्वारा भारत में लाया गया था। इसकी खेती रबी के फसल के रूप में की जाती है। इस सब्जी में पोषक तत्वों की अधिक मात्रा पाई जाती है। बंद गोभी को सब्जी के रूप में और सलाद के रूप में उपयोग किया जाता है। इसे सुखाकर आचार के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। बंद गोभी में विटामिन ए. और सी, कैलिशयम और फास्फोरस की मात्रा पाई जाती है। जो मनुष्य के शरीर के लिए लाभदायक होते है।

पत्ता गोभी की खेती के लिये जलवायु

जलवायु की उपयुक्तता के कारण बंद गोभी की दो फसलें ली जा सकती है। भारत में पहाड़ी इलाके में अधिक ठंड होती है जिसके कारण इसकी फसल गर्मी के मौसम में और बसंत के मौसम में ली जाती है। बंद गोभी की अच्छे उत्पादन और वृद्धि के लिए ठंडी और आद्र जलवायु अच्छी मानी जाती है। इस फसल में पाले और अधिक गर्मी सहन करने की क्षमता होती है। बंद गोभी के बीज में जब अंकुरण होने लगे तो मौसम का तापमान 28 से 30 डिग्री सेल्सियस का होना चाहिए। इस तापमान पर बीज का अंकुरण अच्छी तरह से होता है। बंद गोभी में एक अच्छी बात यह है कि इसे अगर खेत में उगाते है और ठंड में थोडा सा पाला पड़ जाये तो बंद गोभी का स्वाद अच्छा हो जाता है।

भूमि का चुनाव

इसकी खेती करने के लिए भूमि का चुनाव इसकी किस्म पर निर्भर करता है। यदि अगेती किस्म उगाई जा रही हो तो रेतीली दोमट मिटटी सबसे अच्छी मानी जाती है और यदि पछेती फसल उगाई जा रही हो तो भारी भूमि जैसे मृतिका सिल्ट या दोमट मिटटी बेहतर होती है। उस भूमि का पी. एच. मान 5 से 7. 5 का हो तो अच्छा होता है।

खेत की तैयारी

बंद गोभी की फसल को उगाने से पहले खेत को मिटटी पलटने वाले हल से या ट्रैक्टर से करें। लगभग 3 या 4 बार गहरी जुताई करके खेत में पाटा लगाकर भूमि को समतल बना लें। इसके बाद ही फसल को लगायें।

बंद गोभी की किस्में

इसकी किस्मों को दो भागों में बांटा गया है।

अगेती किस्मः प्राइड ऑफ़ इण्डिया, मीनाक्षी, गोल्डन एकर और अर्ली ड्रमहेड आदि।

पछेती किस्मः लेट ड्रम हेड, पूसा ड्रम हेड, अर्ली सॉलिड ड्रम हेड एक्स्ट्रा अर्ली एक्स्प्रक्स, लार्ड माउंटेन हेड कैबेज लेट, सेलेक्टेड डब्ल्यू, डायमंड, सेलेक्शन–8, क्वीईसिस्ट्स और पूसा मुक्त आदि।

इसकी खेती करने का उपयुक्त समय

बंद गोभी को बोने का समय इसकी किस्म पर ही आधारित होता है। मैदानी भागो में अगेती किस्मो को अगस्त से सितम्बर के महीने में उगाया जाता है। जबकि पिछेती किस्मों के लिए सितम्बर से अक्तूबर का महिना सर्वोतम होता है।

बीज की मात्रा

बंद गोभी की अगेती किस्मों के लिए 500 ग्राम बीज की मात्रा एक हेक्टेयर भूमि के लिए पर्याप्त होती है। इसके आलावा पिछेती किस्मों के लिए 400 ग्राम प्रति एक हेक्टेयर बीज की मात्रा काफी होती है।

रासायनिक खाद का प्रयोग

यदि खेत में रासायनिक खाद का प्रयोग करना है तो लगभग 120 किलो नाइट्रोजन, 50 से 60 किलो फास्फोरस की मात्रा, और 50 से 60 किलो पोटाश की

*शोध छात्र, उद्यान विज्ञान विभाग, **परियोजना सहायक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (यू0पी0)

मात्रा काफी होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा में फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा को मिलाकर खेत में बिखेर दें। इस खाद के प्रयोग करने के एक महीने बाद बाकी बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा भूमि में मिला दें।

खेत की सिंचाई

बंद गोभी की फसल में सिंचाई की बहुत आवश्कता होती है। क्योंकि जिस भूमि में बंद गोभी की फसल उगाई जा रही हो उस भूमि में नमी हमेशा रहनी चाहिए। जिसके लिए हमे समय–समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए। बंद गोभी की फसल में 7 से 10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहे। लेकिन जब इसकी फसल तैयार हो रही हो खेत में ज्यादा सिंचाई ना करें। नहीं तो गोभी के फल फट सकते है।

खरपतवार पर नियंत्रण

बंद गोभी की फसल में अनचाहे खरपतवार को दूर करने के लिए एक बार सिंचाई करने के बाद हल्की–हल्की निराई और गुड़ाई करना चाहिए। इसकी फसल में ज्यादा गहरी निराई ना करें नही तो गोभी की जड़े कट सकती है। निराई–गुड़ाई करने के 4 से 6 सप्ताह के बाद मिटटी चढ़ा देनी चाहिए।

बंद गोभी में लगने वाले रोग और उस पर नियंत्रण

कैबेज मैगेट

यह कीट तापमान अधिक होने पर बंद गोभी की जड़ों को नुकसान पहुँचता है जिसके कारण बंद गोभी का पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम करना बहुत जरूरी है।

रोकथाम का उपाय

इस कीट के कुप्रभाव से बचने के लिए खेत में नीम की खाद का प्रयोग करना चाहिए।

डायमंड बैकमोथ

यह कीट भूरे या कत्थई रंग का होता है। इसकी लम्बाई लगभग 1 सेंटीमीटर की होती है और इसके अंडे 0. 5 मिलीमीटर व्यास के आकार के होते है। इस कीट की सूंड़ी एक सेंटीमीटर लम्बी होती है जिससे यह पौधे की पत्तियों के किनारे वाले हिस्से को खा जाती है।

रोकथाम का उपाय

नीम की पत्तियों का काढ़ा बनाएं और इस काढ़े को गौमूत्र में मिला दें। इन दोनों के मिश्रण की 500 मिलीलीटर की मात्रा को किसी पम्प में डालकर बंद गोभी की फसल पर तर–बतर करके छिड़काव करें। इस छिड़काव से पौधे में हुए कीटों के प्रभाव को दूर किया जा सकता है।

बलैक लैग

पौधे में यह रोग उस स्थान पर होता है जंहा नमी होती है। पौधे में यह रोग बीजों के कारण होता है। जिससे पौधे की जड़ सड़ जाती है। फलस्वरूप पौधा मुरझाकर भूमि पर गिर जाता है। पौधे में यह बीमारी एक फफूंदी के कारण होती है। जिसका नाम फोमा लिगमा है। इसकी रोकथाम करने के लिए बीज को बोने से पहले उपचारित करें। बीजो को गौमूत्र या कैरोसिन, नीम के तेल से उपचारित करना चाहिए।

मृदु रोमिल आसिता

पौधे में यह बीमारी एक फफूँदी के कारण होती है। इसका कुप्रभाव छोटे–छोटे पौधे पर होता है। जिसके कारण हरा–भरा पौधा रंग विहीन हो जाता है।

फसल तैयार होने के बाद कटाई

जब बंद गोभी की फसल पूरी तरह विकसित हो जाये और ठोस हो जाये तो ही इसकी कटाई करनी चाहिए। भारत के मैदानी भागों में दिसंबर के महीने में मध्य में बंद गोभी की कटाई की जाती है, लेकिन पहाड़ी भागों में इसकी कटाई दो बार की जाती है। बंद गोभी की पहली कटाई सितम्बर से दिसंबर में की जाती है और दूसरी बार मार्च से जून में की जाती है।

उपज की प्राप्ति

बंद गोभी की उपज इसकी किस्म और अच्छी देखभाल पर आधारित होती है। बंद गोभी की अगेती किस्म से हमे 200 से 250 क्विंटल प्रति एक हेक्टेयर और पिछेती किस्म से 250 से 300 क्विंटल तक की उपज प्राप्त हो जाती है।●

बटन मशरूम की वैज्ञानिक खेती

अजीत सिंह वत्स, एस.एन.एस. चौहान एवं लाल पंकज कुमार सिंह

मशरूम भारत के लिए कोई नई वस्तु नहीं है। आदिकाल से मनुष्य खाने के लिए एवं दवा के रूप मे उपयोग करता आ रहा हैं। इसकी वानस्पतिक वृद्धि धागे नुमा संरचनाओ द्वारा होती है जिसे कवक जाल कहते है। इसमे प्रजनन बीजाणुओं द्वारा होता है। इसकी हजारों किस्में प्राकृतिक रूप मे वर्षा के नमी युक्त वातावरण मे पहाड़ी या मैदानी क्षेत्रों में स्वयं, वृक्षों, गाोबर, घास–फूस या सूखी लकड़ी पर उगती है, जिसमे जहरीली एवं खाने योग्य की पहचान कर पाना कठिन होता है। इसे विभिन्न क्षेत्रो मे भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे–खुम्ब, ढिंगरी, भू–छत्रक, भू–पुष्प, गुच्छी एवं भुई–फोड़।

मशरूम एक स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं औषधीय गुणों से युक्त रोगरोधक, प्रोटीनयुक्त शाकाहारी खाद्य पदार्थ है। मशरूम का सभ्यता के आदिकाल से ही आहार के रूप में उपयोग किया जाता रहा हैं। प्राचीन काल में इन्हें स्वादिष्ट खाद्य माना जाता था तथा इसकी महक एवं स्वाद के कारण ही इन्हे पसन्द किया जाता था। चीन के लोग इसे महौषधि एवं रसायन सदृश्य मानते हैं जो जीवन में अद्भुत शक्ति का संचार करती हैं।

भारत वर्ष मे तीन प्रजातियो की खेती व्यवसायिक स्तर पर की जाती है। ये है– श्वेत बटन मशरूम (शीतकालीन), ढिंगरी मशरूम (समशीतोष्णीय) एवं वाल्वरेला मशरूम (ग्रीश्मकालीन)। इस प्रदेश के मौसम मे उपर्युक्त तीनों किस्म की खेती विभिन्न मौसम मे पूरे वर्ष की जा सकती है। शीतकाल में श्वेत बटन मशरूम की विस्तृत खेती एवं अन्य पहलुओ के विषय की जानकारी का विवरण इस प्रकार हैः–

श्वेत बटन मशरूम (शीतकालीन)

देश में श्वेत बटन मशरूम (शीतकालीन) का उत्पादन अन्य किस्म के मशरूम से अधिक होता है। श्वेत बटन मशरूम को यूरोपियन (शीतकालीन) एवं बटन मशरूम भी कहते है। इस मशरूम का उत्पादन पौध अवशेषों के साथ कई प्रकार के रसायनों को मिलाकर कम्पोस्ट पर किया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्से में इस मशरूम की खेती प्राकृतिक दशा में केवल जाड़े के महीनों में ही किया जा सकता है, क्योकि इसकी वानस्पतिक वृद्धि के लिए 220 से 250 सेंटीग्रेड तापमान उपयुक्त होता है। इस प्रकार के मशरूम को उगाने हेतु तापमान, आर्द्रता, हवा एवं रोशनी के विषय मे विवरण निम्न प्रकार हैः–

तापमान

किसी भी मशरूम की खेती के लिए विभिन्न अवस्थाओं मे विभिन्न प्रकार के तापक्रम की आवश्यकता होती है। पहली अवस्था कवक जाल की बढ़वार जिसे स्थान रन भी कहते है। इस अवस्था के लिए 220 से 250 सेंटीग्रेड तापमान की तथा दूसरी अवस्था जिसे फल उत्पादन या फ्रूटीफिकेशन कहते है, के लिए 140 से 180 सेंटीग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है।

आर्द्रता

इस मशरूम की सफल खेती के लिए 90 प्रतिशत आर्द्र वातावरण होना आवश्यक है। इसके लिए मशरूम उत्पादन कक्ष की फर्श एवं दीवारों आदि पर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए।

हवा एवं रोशनी

अच्छे उत्पादन हेतु हवा एवं रोशनी का उचित प्रबन्ध उत्पादन कक्ष में बनाये रखना आवश्यक होता है। उत्पादन कक्ष में कार्बन डाई आक्साइड गैस का जमाव 0.1 या 0.15 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके लिये उत्पादन कक्ष में 4 या 6 बार प्रति घंटे की दर से हवा का बदलाव करते रहना चाहिये। इसके

कृषि विज्ञान केन्द्र पिलखी, मऊ

अतिरिक्त मशरूम की अच्छी उपज लेने के लिये अच्छे स्पान (बीज) का चुनाव भी आवश्यक है।

मशरूम उत्पादन (खेती की विधि)

श्वेत बटन मशरूम की खेती के लिये निम्नलिखित विधि क्रमवार करना आवश्यक है।

कम्पोस्ट बनाने की विधि

श्वेत बटन मशरूम के खेती के लिए एक विशेष प्रकार की कम्पोस्ट की आवश्यकता होती है। इसको बनाने हेतु निम्न प्रकार की सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है, जिसका मिश्रण सड़ाकर कम्पोस्ट तैयार किया जाता है, कम्पोस्ट बनाने के लिए कई सूत्रों (फार्मूला) का सफल परीक्षण किया गया है। सर्वाधिक उपयुक्त कुछ सूत्र नीचे दिये गये हैं, जिनमें से उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर आसानीपूर्वक सूत्र चुना जा सकता है।

सूत्र (फार्मूला) – 1

सामग्री	मात्रा
गेहूँ का भूसा या	300 किग्रा0
धान के पुआल की कुट्टी	400 किग्रा0
अमोनियम सल्फेट या	9.0 किग्रा0
कैलशियम अमोनियम नाइट्रेट	
सुपर फास्फेट	3.0 किग्रा0
यूरिया	4.5 किग्रा0
गेहूँ का चोकर या	30 किग्रा0
धान का कना	50 किग्रा0
फ्यूराडान	120 ग्राम
लिन्डेन 1.32 प्रतिशत धूल	250 ग्राम
शीरा	5.0 किग्रा0
म्यूरेट आफ पोटाश	3.0 किग्रा0

सूत्र (फार्मूला) – 2

सामग्री	मात्रा
गेहूँ का भूसा या	300 किग्रा0
गेहूँ का चोकर	15 किग्रा0
मुर्गी की खाद	400 किग्रा0
यूरिया	5.5 किग्रा0
जिप्सम	20 किग्रा0

सूत्र (फार्मूला) – 3

सामग्री	मात्रा
धान के पुआल की कुट्टी	1000 किग्रा0
मुर्गी की खाद	150 किग्रा0
ब्रेवर्स ग्रेन	72 किग्रा0
यूरिया	14.5 किग्रा0
जिप्सम	30 किग्रा0

सूत्र (फार्मूला) – 4

सामग्री	मात्रा
धान के पुआल की कुट्टी	1000 किग्रा0
मुर्गी की खाद	150 किग्रा0
गेहूँ का चोकर	42 किग्रा0
जिप्सम	30 किग्रा0

उपयुक्त कम्पोस्ट बनाने के सूत्रो के अनुसार दो प्रकार की विधियों से कम्पोस्ट बनाया जाता है। फार्मूला 1 का कम्पोस्ट लम्बी विधि से तैयार किया जाता है तथा बाकी तीनो सूत्रों की कम्पोस्ट लघु विधि से तैयार किया जाता है।

लम्बी विधि से कम्पोस्ट बनाने का ढंग

इस विधि से कम्पोस्ट लगभग 28 दिन मे पूरी होती है तथा कम्पोस्ट को लगभग 7 या 8 बार पलटना पड़ता है। इस विधि से वे छोटे तथा मध्यम किसान कम्पोस्ट बनाते है जिनके पास पाश्चराइजेशन की सुविधा नहीं होती है। यद्यपि इस विधि से तैयार कम्पोस्ट से मशरूम का उत्पादन कुछ कम मात्रा में होता है परन्तु साधनहीन मशरूम उत्पादक के लिए यह विधि उपयुक्त है।

इस विधि से कम्पोस्ट बनाने के लिये सर्वप्रथम गेहूँ के भूसे या धान के पुआल की कुट्टी को स्वच्छ पानी से उलट–पुलट कर अच्छी प्रकार भिगोया जाता है। दूसरे दिन भी भूसे को अच्छी प्रकार पलटकर भिगोना चाहिये तथा उसी दिन गेहूँ के चोकर मे सभी रासायनिक खाद मिलाकर पानी मे गीला करके लुगदी की तरह बनाकर गीले बोरे से ढक कर 24 घंटे के लिये रख देते हैं। अगले दिन इस मिश्रण को भीगे हुये भूसे के ऊपर छिड़क कर अच्छी प्रकार मिला देते है। पलटाई का कार्यक्रम निम्न प्रकार होता है।

शून्य दिवस

जिस दिन भीगे हुये भूसे में रासायनिक खादों एवं चोकर के मिश्रण को मिलाकर 1.8 मीटर लम्बी, 1.5

मीटर चौड़ी तथा 1.5 मीटर ऊँची ढेर लगाते हैं, उसे ही शून्य दिवस कहते है। ढेर की लम्बाई गेहूँ के भूसे आदि की मात्रा के अनुसार होती है, परन्तु चौड़ाई तथा ऊँचाई निश्चित रहती है। इस ढेरी को 5 दिन तक बिना किसी व्यवधान के पड़े रहने देना चाहिये। इसके बाद कम्पोस्ट की नियमित पलटाई अच्छी प्रकार सड़ने के लिये की जाती है।

छठवाँ दिन (पहली पलटाई)

ढेर लगाने के छठवें दिन पहली पलटाई की जाती है। इस पलटाई के समय सर्वप्रथम बने हुये ढेर के ऊपरी एवं बाहरी 1 फीट की मोटाई की सतह को अलग करके एक स्थान पर इकट्ठा कर लेते हैं। ढेर के बीच वाले भाग को जो कि काफी गर्म रहता है को ठंडा होने के लिये अलग फैला देते हैं। बाद में इन दोनो को अलग अलग आपस में मिलाकर फिर से नया ढेर लगाते है। ढेर लगाते समय इस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिये कि ऊपरी तथा बगल के सतह की सामग्री बीच मे तथा बीच की सामग्री ऊपर तथा बाहर रहे। पानी का छिड़काव भी आवश्यकतानुसार करना चाहिये। प्रथम पलटाई के समय ही शीरा की सम्पूर्ण मात्रा भी मिला देना चाहिये।

दसवाँ दिन (दूसरी पलटाई)

पहली पलटाई की भाति ढेर के ऊपरी तथा बाहरी हिस्से तथा बीच के हिस्से को अलग अलग अच्छी तरह मिलाकर, बाहरी तथा ऊपरी सतह को बीच मे तथा बीच की सामग्री को ऊपर तथा बगल मे रखकर फिर ढेरी लगा लेते है तथा आवश्यकतानुसार पानी भी मिला देते है।

तेरहवाँ दिन (तीसरी पलटाई)

ढेरी को तोड़कर उसमें 30 किग्रा0 जिप्सम मिलाकर फिर ढेरी लगा देते हैं।

सोलहवाँ दिन (चौथी पलटाई)

तीसरी पलटाई की भांति पलटाई करते समय 120 ग्राम फ्यूराडान मिलाकर ढेरी लगा देनी चाहिये।

उन्नीसवाँ दिन (पॉचवी पलटाई)

चौथी पलटाई की तरह

बाइसवाँ दिन (छठवी पलटाई)

चौथी तथा पाँचवी पलटाई की भांति।

पच्चीसवाँ दिन (सातवीं पलटाई)

सातवीं पलटाई के समय लिन्डेन 1.3 प्रतिशत की पूरी मात्रा को अच्छी प्रकार मिलाकर ढेर लगा देना चाहिये।

अट्ठाइस्वाँ दिन (आठवीं पलटाई)

इस दिन ढेर को तोड़कर फैला लेते हैं तथा उसमे से अमोनियम की गंध नहीं आ रही है तो समझना चाहिये कि कम्पोस्ट अच्छी तरह से सड़ गई है। परन्तु यदि कम्पोस्ट से अमोनिया की गंध आ रही है तो तीन दिन के बाद एक दो पलटाई पहले की तरह और करनी चाहिये जिससे कि अमोनिया की गंध निकलना बन्द हो जाये।

कम्पोस्ट की पलटाई करते समय कम्पोस्ट में पानी की मात्रा का ध्यान अवश्य रखना चाहिये, क्योकि यदि पानी की मात्रा अधिक हो जाती है तो उसमें मिलाये गये उर्वरक एवं पोषक तत्व बह जाते हैं और खाद चिपचिपी हो जाती है तथा यदि पानी की कमी हो जाती है तो खाद अच्छी तरह से सड़ती नहीं है। इन दोनों परिस्थितियों में मशरूम का उत्पादन कम हो जाता है। पानी की सही जाँच के लिये कम्पोस्ट को मुट्ठी में दबाने पर पानी की बूदें नीचे ना गिरें बल्कि केवल उँगलियों के बीच दिखायी दें तो समझना चाहिये कि पानी की मात्रा ठीक है। इस प्रकार से तैयार की गई कम्पोस्ट में अब स्पानिंग (बिजाई) की जा सकती है।

स्पानिंग (बिजाई)

कम्पोस्ट में स्पान (बीज) को डालने की क्रिया को बिजाई कहते है। बिजाई के लिये सर्वथा ताजा बना हुआ स्पान ही प्रयोग मे लाना चाहिये। बीज (स्पान) को

कम्पोस्ट मे 500–700 ग्राम प्रति 100 किग्रा0 कम्पोस्ट की दर से अच्छी प्रकार मिलाकर लकड़ी के ट्रे या पालीथिन के झोली में भरकर अच्छी प्रकार दबा देना चाहिये, जिससे कि ऊपरी सतह समतल हो जाय। इसके सतह को अखबार से ढक देना चाहिये। अखबार को प्रयोग मे लाने से पहले फार्मलीन के 0.4–1.00 प्रतिशत घोल से उपचारित कर लेना चाहिये। अखबार के ऊपर पानी छिड़कने वाली मशीन से हल्का पानी का छिड़काव कर देना चाहिये जिससे कि अखबार गीला हो जाये। ट्रे या पालीथिन जिसमें कि बिजाई होनी हो, को ऐसे कमरे में रखना चाहिये जिसका कि तापमान 25.10 सेंटीग्रेड हो। अखबार के ऊपर दिन में दो–तीन बार पानी का छिड़काव करते रहना चाहिये जिससे कि अखबार तथा कम्पोस्ट की ऊपरी सतह सूखने न पाये तथा कमरे की आर्द्रता 90–95 प्रतिशत बनी रहे। ऐसे वातावरण मे साधरणतः स्पान की बढ़वार ट्रे या पालीथीन के झोलों में दो हफ्ते में हो जाती है। यह बढ़वार सतह पर सफेदी छा जाने से पहचानी जा सकती है। इस समय कम्पोस्ट के ऊपरी सतह पर केसिंग मिट्टी डालने का उचित समय होता है।

केसिंग

कम्पोस्ट में मशरूम स्पान की पूरी बढ़वार हो जाने के पश्चात् अखबार हटा कर कम्पोस्ट के ऊपरी सतह पर मिट्टी या मिट्टी के मिश्रण की एक पतली सतह को फैला दिया जाता है। इस क्रिया को केसिंग कहते है। केसिंग के लिये मिट्टी का मिश्रण बनाने हेतु गोबर की सड़ी खाद एवं बगीचे की मिट्टी को बराबर मात्रा मे मिलाते हैं। केसिंग मिट्टी का पी0एच0 8 के लगभग होना चाहिये, अगर पी0एच0 कम हो तो चूना तथा अधिक हो तो जिप्सम केसिंग मिट्टी में मिलाना चाहिये। केसिंग मिट्टी का केसिंग करने से पहले निर्जीवीकरण कर लेना चाहिये। यह क्रिया भाप तथा रसायन द्वारा किया जाता है। केसिंग मिट्टी के उपयोग के 21 दिन पूर्व एक घन मीटर मिट्टी के मिश्रण को 2 प्रतिशत फार्मलीन के 2 लीटर को 40 लीटर पानी में घोल कर अच्छी प्रकार गीला करके मिट्टी का ढेर लगा देना चाहिये तथा इसे 48 घंटे के लिये पालीथिन या तिरपाल से अच्छी तरह से ढक देना चाहिये। इस अवधि के बाद उपचारित मिट्टी को अच्छी तरह फैला दें जिससे कि वह अतिरिक्त फार्मलीन गैस से मुक्त हो जाय। निर्जीवीकृत केसिंग मिट्टी की 2 से 4 सेमी0 की परत पूरी तरह से बढ़वार हो चुकी ट्रे या पालीथिन के झोले में समान रूप से डालना चाहिये। केसिंग की क्रिया के बाद 7 से 10 दिन तक कमरे का तापमान 25.10 सेंटीग्रेड तक रखना चाहिये तथा ग्यारहवें दिन से तापमान 14–180 सेंटीग्रेड तक कर देना चाहिये तथा आर्द्रता 85–90 प्रतिशत होनी चाहिये। केसिंग मिट्टी के ऊपर पानी का छिड़काव करते रहना चाहिये, जिससे कि यह गीली बनी रहे। इस समय ताजी हवा हेतु कमरे के रोशनदान को खोल देना चाहिये। इस स्थित मे मशरूम का उत्पादन पिनहेड द्वारा आरम्भ होता है जो कि 7 से 8 दिन के अन्दर तैयार होकर तुड़ाई के योग्य हो जाता है।

मशरूम की तुड़ाई

मशरूम का उत्पादन गुच्छों में होता है। मशरूम की फसल 8–10 दिन के अन्तराल मे 3–4 बार निकलती है। इस मशरूम की तुड़ाई के लिये प्रातः का समय उपयुक्त होता है, इसके लिये मिट्टी के पास के भाग को थोड़ा सा मरोड़कर तोड़ लिया जाता है। इस मशरूम का उत्पादन 6–7 सप्ताह तक मिलता है तथा कभी–कभी यह अवधि 10–12 हफ्ते तक भी हो जाती है।

उपज

मशरूम की उपज इस विधि से बनायी गयी कम्पोस्ट से 10–12 किग्रा0 प्रति 100 किग्रा0 कम्पोस्ट से प्राप्त हो सकती है।●

कृषि-वानिकी अपनायें अतिरिक्त लाभ पायें

डा0 एस0 के0 वर्मा एवं डा0 ओ0पी0 राव

देश की जनसंख्या की लगातार बढ़ोत्तरी से कृषि योग्य भूमि में कमी हो रही है। क्योंकि कृषि भूमि पर शहरीकरण तथा सड़कों का चौड़ीकरण होता जा रहा है जिस कारण वनों पर भी दबाव बढ़ता जा रहा है। जिस वजह से वन क्षेत्रों में कमी आ रही है। वनों का क्षेत्रफल 1952 की नीति के अनुसार 33 प्रतिशत होना चाहिए जिस वजह से कृषि भूमि पर कृषि फसलों के साथ–साथ तेजी से बढ़ने वाले वन वृक्षों का वृक्षारोपण करना अतिआवश्यक है जिसको हम कृषि वानिकी कहते हैं जिससे एक ही भूमि पर कृषि फसलों के अलावा वृक्षों द्वारा भी लाभ प्राप्त होते हैं। मनुष्य के जीवन के लिये संतुलित पर्यावरण जरूरी है। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित है। बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण आदि के कारण वन क्षेत्र कम होता जा रहा है जिसकी वजह से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन बढ़ रहा है। जिसमें कार्बन डाईआक्साइड गैस की अधिकता के कारण पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है तथा धरती का तापमान बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन की वजह से भविष्य में कृषि फसलें, वृक्ष, फल, फसल आदि की पैदावार में गिरावट होने की संभावना हो सकती है। जिससे फसल चक्र भी प्रभावित हो जायेगा। हमारे देश की लगभग 60 प्रतिशत खेती वर्षा पर निर्भर रहती है। वर्षा की कमी से अन्न उत्पादन कम हो गया, जिस वजह से दलहन आदि के दाम में बढ़ोत्तरी हो गई। नई तकनीकों को अपनाकर ग्लोबल वार्मिंग या पृथ्वी के बढ़ते तापमान से निपटा जा सकता है। इस तरह से हम अधिक से अधिक कार्बन मिटटी में जमा कर सकते हैं। इस प्रकार हम खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ा सकते हैं और साथ ही साथ मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने वाले उर्वरक तथा वृक्षारोपण भी कर सकते हैं। गांवों में निवास करने वाली हमारी तीन चौथाई जनसंख्या वृक्षों पर ही आश्रित है। हमारे देश का कुल क्षेत्रफल 329 मिलियन हेक्टेयर है जिसमें से 67 प्रतिशत कृषि योग्य तथा जंगल का क्षेत्रफल है शेष 33 प्रतिशत क्षेत्रफल बंजर एवं कृषि योग्य नहीं है। भारत में 33.3 प्रतिशत वनाच्छादित क्षेत्र के स्थान पर लगभग 20 प्रतिशत वनाच्छादित क्षेत्र ही रह गये हैं जो कि हमारे लिये एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग गंगा मैदान के अन्तर्गत आता है जिसको पूर्वांचल के नाम से जाना जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में 1.7 मिलियन हेक्टेयर मिट्टी सैलायन एंव सोडिक पायी जाती है, जिसमें मृदा सुधारक, उर्वरक, सिंचाई, आदि सुविधाओं को लघु कृषकों द्वारा आपूर्ति करना सम्भव नहीं होता। इस प्रकार प्रदेश एवं खासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश में बढ़ती जनसंख्या के लिये ईंधन, चारा, खाद्यान्न व इमारती लकड़ी आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। इस तरह की मृदाओं में छोटे कृषकों द्वारा कृषि–वानिकी अपनाकर उपरोक्त अनुपजाऊ भूमि को उपयोग में लाया जा सकता है।

कृषि–वानिकी के अन्तर्गत एक ही भूमि पर कृषि/चारा के साथ–साथ वृक्ष लगाये जाते हैं। इस पद्धति को अपनाने से किसानों को खाद्य पदार्थ, चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी, आदि आसानी से प्राप्त हो जाते हैं तथा किसानों को फसल के साथ–साथ वृक्षों से भी आमदनी प्राप्त हो जाती है। जैसा कि हम जानते हैं कि जिस रफ्तार से हमारी जनसंख्या बढ़ रही है, वनों पर दबाव भी उतना ही तीव्र होता जा रहा है। अभी भी ग्रामवासियों को ईंधन लकड़ी, चारा आदि को इकट्ठा करने के लिये मीलों दूर जाना पड़ता है। जिससे कि उनकी ऊर्जा का ह्रास तो होता ही है काफी समय भी बरबाद होता है। अगर किसान उतनी ही भूमि पर कृषि–वानिकी पद्वति आनाये तो उसे खाद्य पदार्थ के साथ–साथ ईंधन, लकड़ी, चारा, फल, आदि आसानी से उपलब्ध हो सकते हैं। इसी के साथ प्राकृतिक वनों का दोहन भी घट जायेगा जिससे हमारा पर्यावरण भी शुद्ध रहेगा।

कृषि–वानिकी को अपनाये जाने की आवश्यकता प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कारणों से निम्न लाभों के लिये

कृषि वानिकी विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या–224 229

किया जा सकता है।

- बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये चारे, ईंधन, इमारती लकड़ी की कमी का निवारण किया जाना।
- उपलब्ध प्राकृतिक वनों पर जैविक दबाव को कम किया जाना।
- भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल से अधिक पैदावार प्राप्त किया जाना।
- पशुओं का संख्या में वृद्धि के कारण अधिक चराई के दबाव को कम किया जाना।
- परती भूमि में उपयुक्त वृक्षारोपण के तकनीक व प्रजातियों को कृषि फसलों के साथ रोपित कर भूमि की उत्पादकता में वृद्धि किया जाना।
- पर्यावरण प्रदूषण को वनोच्छादन के माध्यम से कम किया जाना।
- भू–क्षरण पर रोक एवं मृदा की उर्वरता में वृद्धि करना।
- उद्योगों हेतु कच्चे माल की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
- कृषि उत्पादन बढ़ाने व आर्थिक उन्नति के साथ रोजगार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अवसर प्रदान करने में सहायता करना।

कृषि–वानिकी पद्धतियाँ

कृषि–वानिकी के तीन मुख्य अवयव होते हैं। 1. वृक्ष, 2. कृषि फसलें एवं 3. चारा फसलें। इन अवयवों में वृक्ष ही एक ऐसा अवयव है जो सभी कृषि–वानिकी प़द्धति में निश्चित रुप से रहता है। इन अवयवो को आपस में मिलाकर कई कृषि–वानिकी पद्धतियाँ हमारे देश में प्रचलित हैं।

कृषि–वानिकी पद्वति के अन्तर्गत चयनित प्रक्षेत्र के मेंड़ों एवं प्रक्षेत्र के अन्दर एक निश्चित दूरी पर वृक्ष रोपित किये जाते हैं तथा बीच में कृषि फसलों को उगाया जाता है। जैसे धान, गेहूँ, चना, दालें एवं तिलहनी फसलें, आदि तथा वृक्षों में पापुलर, यूकेलिप्टस, सागौन एवं शीशम, आदि उपयुक्त होते हैं।

कृषि–उद्यानिकी पद्धति के मुख्य उददेश्य हैं–उत्पादकता में वृद्धि, फलों द्वारा स्वास्थ्य में वृद्धि, –फलों की बिक्री से निरन्तर आय। इस पद्धति में आम, अमरूद, पपीता, शरीफा आदि को कृषि फसलों के साथ लगाया जाता है। इस पद्धति में फलदार वृक्षों को चयनित प्रक्षेत्र में आंवला 8x8 मीटर की दूरी या आवश्यकतानुसार दूरी पर पौध रोपित करते हैं तथा इनकी दो लाइनों के बीच में दलहनी फसलें उगाई जाती हैं। पौधों का छत्र बढ़ने पर सूरन, हल्दी, अदरक, अरबी आदि की खेती की जा सकती है।

कृषि–उद्यानिकी–वानिकी पद्धति में बहुउददेशीय वन वृक्ष प्रजातियों जैसे कैजुरिना, शीशम, सागौन, तथा यूकेलिप्टस, आदि को 10x10 मीटर की दूरी पर लगाकर इनके बीच में 10x6 मीटर की दूरी पर फल वृक्ष जैसे अमरुद, पपीता, आंवला, नींबू, बेर, आदि का वृक्षारोपण करते हैं तथा इन दोनों प्राजतियों के बीच की खाली जमीन पर फसलें उगाई जाती हैं। इस प्रकार से कृषकों को फसलें, फल एवं काष्ठ तीनों ही एक ही प्रक्षेत्र में उपलब्ध हो जाते हैं।

वानिकी–चारा पद्धति के अन्तर्गत चारे की कमी वाले पूर्वी उ0प्र0 के क्षेत्रो में बहुउद्देशीय प्रजातियों में सुबबूल, नीम, बकैन, शहतूत, कचनार, सिरस, सेमल आदि के साथ चारे वाली फसलें जैसे अंजन घास, पैनिकम घास, सेनचरस घास, स्टाइलो तथा दलहनी फसलें आदि लगाई जाती हैं। जिन वृक्षों पर अधिक गुणवत्ता वाली पत्तियां आती हैं जिनमें प्रोटीन व खनिज तत्वों की मात्रा अधिक हो उन वृक्षों को इसके अन्तर्गत लगाया जाता है। पेंड़ों की पत्तियों में प्रोटीन घासों की अपेक्षा अधिक होती हैं, अतः भूसे के साथ पेड़ों की पत्तियों को मिलाकर पशुओं को खिलाया जाता है। चारे वाले वृक्ष की पत्तियां ऐसे समय में उपयोगी होती है जब ग्रीष्मकाल में सारी घासें सूख जाती हैं। इसमें बहुउददेशीय नाईट्रोजन स्थिरीकरण वाले पेंड़ जो उर्वरता के श्रोत होते हैं के साथ–साथ फलीदार फसलों को उगाते हैं।

मत्स्य पालन–वानिकी पद्धति में तालाबों के किनारे बहुउद्देशीय वृक्ष लगाये जाते हैं और तालाबों में

(शेष पृष्ठ 18 पर)

सहजनः स्वास्थ्य के लिए वरदान

अनु सिंह* एवं ए0पी0 राव*

सहजन भारत की एक लोकप्रिय सब्जी है जिसे सीजना, सुरजना, शोभाजन, मुरूंगई, मरूनागाई, इण्डियन हार्सरैडिश आदि नामों से भी जाना जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम मोरिंगा ओलिफेरा हैं। मोरिंगा तमिल शब्द मुरूंगई से बना है जिसका अर्थ त्रीकोणीय मुडा हुआ फल होता है। यह उष्ण कटीबंधीय और उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में आसानी से उगता है। सहजन भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान हिमालयी क्षेत्रों में मूल रूप से पाया जाता है। सहजन की उत्पत्ति मूलतः भारत में ही हुई है लेकिन औषधि के तौर पर इस्तेमाल होने की वजह से यह दूसरे देशों में भी पहुंच गया है। प्राचीन समय से ही सहजन भारत में उपयोग किया जाने वाला पेड़ है जिसका प्रमाण हमें ''सुश्रुत संहिता" से मिलता है ।

इसका पौधा लगभग 10 मीटर उंचाई वाला होता है किन्तु लोग इसे डेढ़–दो मीटर की उंचाई से प्रतिवर्ष काट देते हैं ताकि इसके फल–फूल–पत्तियों तक हाथ सरलता से पहुँच सके। सहजन के पेड को कटिंग या बीज द्वारा बड़ी आसानी से लगाया जा सकता है। यह पूरे भारत में सुगमता से पाया जाने वाला पेड़ है इसकी कच्ची–हरी फलियाँ सर्वाधिक उपयोग में लायी जातीं हैं। सहजन के पत्ते, फूल, फलियां, बीज व छाल सभी का किसी न किसी रूप में प्रयोग होता है। भारत में सहजन का सर्वाधिक उपयोग दक्षिण भारत में सांभर एवं सब्जी के रूप में किया जाता है। दक्षिण भारत में पूरे वर्ष भर फली देने वाले सहजन के पेड़ पाए जाते हैं जबकि उत्तर भारत में कुछ प्रजातियों को छोड़कर सहजन सामान्यतः वर्ष में एक बार ही फली देता है।

पोषक तत्व

सहजन में पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, आयरन, बीटा कैरोटीन, अमीनो एसिड, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, सीलियम विटीमिन ए, सी और बी काम्प्लेक्स प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। सहजन प्राकृतिक एंटीऑक्सिडेंट का अच्छा स्रोत होता है। सहजन की पत्तियों में फाइबर, वसा, प्रोटीन, और खनिज तत्व जैसे कैल्शियम मैग्नीशियम, फास्फोरस इत्यादि पाए जाते हैं। सहजन की पत्तियों में विटामिन ए, बी कॉम्प्लेक्स, विटामिन सी, और अमीनो एसिड्स, फाइटोकेमिकल्स भी भरपूर मात्रा में होते हैं। सहजन के फूल में कैल्शियम, पोटैशियम और अमीनो एसिड पाए जाते हैं। सहजन के जड़ों में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सोडियम और अल्कलॉयड्स पाए जाते है। सहजन के बीजों में ओलिक एसिड, एंटीबायोटिक, फैटी एसिड्स, फाइटोकेमिकल्स, फाइबर, प्रोटीन, विटामिन ए, बी, सी और अमीनो एसिड्स उपस्थित होते है।

एक अध्ययन के अनुसार इसमें दूध की तुलना में चार गुना कैल्शियम और दो गुना प्रोटीन तथा संतरा की तुलना में सात गुना विटामिन सी होता है। सहजन में ओलिक ऐसिड, जो कि एक प्रकार के मोनो सैचुरेटेड फैट है, अधिक मात्रा में पाया जाता है जो कि शरीर के लिए अति आवश्यक है। सहजन पोषक तत्वों एवं स्वास्थ्यवर्धक गुणों के साथ–साथ पाचन तंत्र को भी मजबूती प्रदान करता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। इसमें 92 तरह के मल्टीविटामिन्स, 46 तरह के एंटी आक्सीडेंट गुण, 36 तरह के दर्द निवारक और 18 तरह के अमीनो एसिड मिलते हैं।

सहजन के विभिन्न भागों के औषधीय गुण

पत्तियाँ

- हैजा, दस्त, पेचिश, पीलिया और कोलाइटिस जैसे रोगों के लिए सहजन की पत्तियों का रस पीना काफी असरकारक होता है
- हाई ब्लड प्रेशर के मरीजों को सहजन की पत्तियों का रस निकालकर काढ़ा बनाकर देने से लाभ मिलता है।

*एम.एस.सी. (खाद्य प्रौद्योगिकी), खाद्य प्रौद्योगिकी केन्द्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, **निदेशक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या–224 229

- इसकी पत्तियां कैंसर में भी लाभकारी होती है।
- यह अस्थमा में भी लाभप्रद होता है।
- आंखो और कानों के इंफेक्शन में भी सहजन की पत्तियां लाभकारी होती है।
- सहजन की पत्तियां ब्लड शुगर और कोलेस्ट्रॉल कंट्रोल रखने में सहायक होती हैं।
- सहजन की पत्तियों में पाया जाने वाला पोषक तत्व कुपोषण दूर करने में प्रभावी होता है।
- सहजन उपापचय (मेटाबोलिज्म) क्रिया को सही रखने में मददगार होता है।
- सहजन की पत्तियां बच्चों को दूध में मिलाकर देने से बच्चों की हड्डियां मजबूत होती है।
- सहजन के पत्तों का रस बच्चों के पेट के कीड़े निकालने एवं उलटी दस्त रोकने के काम आता है। सहजन को पीसकर लगाने से घाव एवं सूजन ठीक हो जाता है।
- सहजन की पत्तियों का काढ़ा, गठिया, सियाटिका, पक्षाघात, वायु विकार में शीघ्र लाभ देता है।

फूल

- सहजन के फूल, हृदय रोगों व कफ रोगों में उपयोगी है।
- सहजन के फूल सीरम कोलेस्ट्रॉल को कम करते है।
- सहजन के फूल में एंटीइन्फ्लामेट्री गुण भी पाया जाता है।

जड़

- जड़ का काढ़ा सेंधा नमक व हींग के साथ पीने से मिर्गी के दौरों में लाभ होता है।
- सहजन की जड़ रूखी और स्वाद में कड़वी होती है लेकिन फेफड़ों के लिए बढ़िया टॉनिक के रूप में काम करती है। यह कफ को बाहर निकालती है।
- सहजन का बीज का सेवन गुर्दे में पथरी को बनने से रोकने में लाभकारी होता है
- इसका प्रयोग त्वचा संबंधी विकारों को दूर करने में किया जाता है।

बीज

- सहजन के बीज के आटे को बच्चों में कुपोषण दूर करने के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है।
- यह हाइपरथाईरोडीस्म और क्रोनिक विकारों में भी लाभकारी होता है।
- यह सरदर्द के उपचार में भी प्रयोग किया जाता है।
- सहजन का बीज पाचन तंत्र के लिए फायदेमंद होता है।
- सहजन के बीज का प्रयोग पानी को शुद्ध करने में भी किया जाता है।

सहजन का प्रसंस्करण

सहजन की पत्तियों में आयरन, रेशा, विटामिन ए एवं प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसकी पत्तियों को सुखाकर उसका पाउडर बनाकर उसका प्रयोग फूड सप्लीमेंट के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इसका प्रयोग सूप और सॉस के रूप में भी किया जा सकता है। सहजन के बीज से तेल निकालकर उसका उपयोग खाद्य पूरक के रूप में तथा सौंदर्य प्रसाधनों में किया जा सकता है। सहजन की पत्तियों को जूस के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। सहजन की पत्तियों एवं फलियों के सत् को निकालकर विभिन्न फलों में मिलाकर उत्पाद बनाया जा सकता है। सहजन की फलियों का पाउडर भी खाद्य पूरक के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

कुपोषण में सहजन का महत्व

भारत में कुपोषण एक जटिल समस्या है, चूँकि सहजन शुष्क और अर्ध–शुष्क वातावरण में पनपता है, इसलिए यह पूरे वर्ष एक बहुमुखी, पौष्टिक भोजन स्रोत प्रदान कर सकता है। गर्भवती व प्रसूति महिलाओं और बच्चों के लिए सहजन वरदान माना जाता है। सहजन दुनिया का सबसे ताकतवर पोषण पूरक आहार है। इसमें पाए जाने वाले सभी पोषक तत्व बच्चों के शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक भूमिका निभाते हैं। सहजन की फलियाँ ही नहीं सहजन की पत्तियाँ भी

कुपोषण से लड़ने में फायदेमंद होती है सहजन की पत्तियों में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, ऑयरन, कैल्शियम, पोटेशियम, मैंग्नीशियम, विटीमिन ए, सी और बी काम्प्लेक्स प्रचुर मात्रा में पाया जाता है जो खून की कमी एवं कुपोषण दूर करने में सहायक है। इसके अलावा सहजन के बीज के आटे को बच्चों में कुपोषण दूर करने के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। सहजन में पालक से भी अधिक मात्रा में आयरन पाया जाता है इसलिए यह एक अच्छा हेल्थ सप्लीमेण्ट है यह आयरन टैबलेट्स के पूरक के रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है।पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण इसे सुपर फूड के नाम से भी जाना जाता है। सहजन निम्न आय वर्ग के लिए पोषण संबंधी जरूरतों को पूर्ण करने के लिए एक उचित विकल्प हो सकता है।

अतः सहजन वनस्पति जगत का चमत्कारी पेड़ है जो सिर्फ पोषक तत्वों से ही नहीं भरपूर है बल्कि औषधीय गुणों से भी भरपूर है। अतः सहजन की खेती के लिए किसानों को प्रेरित करना चाहिए क्योंकि सहजन कम देखभाल के बिना ज्यादा लागत एवं मेहनत के किसान इसकी खेती करके मुनाफा प्राप्त कर सकता है तथा लोगों को सहजन के स्वास्थ्यवर्धक गुणों के बारे में जागरूकता फैलाना चाहिए ताकि लोग इसे अपने आहार में शामिल करें।●

(पृष्ठ 15 का शेष)

उन्नत किस्म की मछलियाँ जैसे रोहू, कतला, ग्रास काप एवं सिल्वर कार्प आदि प्रजातियों का उत्पादन किया जाता है। इसमें तालाब के मेंड़ों पर अर्जुन, सुबबूल, नारियल, शहूतूत एवं शीघ्र बढ़ने वाले वृक्ष लगाये जाते हैं। इनकी पत्तियाँ तालाबों में गिरती हैं जिसे मछलियाँ भोजन के रुप में लेती हैं। धीरे–धीरे यह पद्धति उत्तर प्रदेश के किसानों में भी लोकप्रिय हो रही है।

फार्म–वानिकी पद्धति में खेतों के चारों ओर मेंडों पर वृक्षों को लगाया जाता है। तेजी से बढ़ने वाले वृक्षों को प्राथमिकता के आधार पर लगाया जाता है। जिसमें युकेलिप्टस, नीम, सहजन, कैजूरिना आदि द्वारा अतिरिक्त उपज प्राप्त की जा सकती है। साथ ही ईंधन व इमारती लकड़ी एवं चारे की प्राप्ति होती है और खेत में उर्वरा शक्ति में बढ़ोत्तरी होती है तथा मृदा संरक्षण भी होता है।

वृक्ष प्रजाति के चयन हेतु जरुरी जानकारी

- बीमारी रहित हों
- प्लस वृक्षों का चयन
- छोटे छत वाली होनी चाहिये।
- कम शाखायें होनी चाहिये तथा तना लम्बा एवं साफ सुथरा होना चाहिये।
- वृक्ष की छाया से कृषि फसल पर नुकसान न हो।
- मृदा के ऊपर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।
- मूसला जड़ों वाली प्रजाति हो।
- तीव्र गति से बढ़ने वाली प्रजाति हो।
- बहुउददेशीय प्रजाति हो।
- वृक्ष की जड़ों द्वारा मिटटी को बांधने की क्षमता हो।
- लैग्यूमिनेसी परिवार के वृक्षों को वरीयता।

विभिन्न वैज्ञानिक शोध से ज्ञात होता है कि कृषि–वानिकी पद्धति में फसलों के साथ बहुउद्देशीय वृक्षों या झाड़ियों के उगाने से इमारती लकड़ी, ईंधन, चारे व अन्न की पूर्ति ही नहीं होती अपितु प्राकृतिक संसाधनों के होने वाले क्षरण पर भी लगभग पूर्णतया रोक लगाई जा सकती है। इस प्रकार कृषि–वानिकी से सम्बन्धित तकनीकें भूमि व जल दोनों संसाधनों की होने वाली हानि पर प्रभावी तरीके से रोक लगाने के अतिरिक्त क्षेत्र के वन संसाधन में होने वाली हानि को भी कम कर सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्यादा से ज्यादा किसानों द्वारा बहुउददेशीय वृक्षों को उपरोक्त पद्धतियों द्वारा अपनाकर पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसान ज्यादा उत्पादन लेकर अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकते हैं। इस प्रकार वातावरण से ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इस प्रकार वातावरण का संतुलन बना रहेगा तथा साथ ही रोजगार के भी अवसर प्राप्त होंगे।●

भारतीय मृदा तथा उनमे उगाई जाने वाली फसलों का परिचय

डॉ० आर० के० पाठक, डॉ० रविशंकर सिंह, राघवेंद्र सिंह एवं देवेश पाठक

मृदा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द सोलम से हुई है। जिसका अर्थ है फर्श। मृदा, पृथ्वी को एक पतले आवरण में ढके रहती है तथा जल और वायु की उपयुक्त मात्रा के साथ मिलकर पौधों को जीवन प्रदान करती है। भारत में सबसे अधिक (43.4 प्रतिशत) भूभाग पर जलोढ़ मिट्टी पायी जाती है और अन्य मिट्टियों में काली मिट्टी, लाल मिट्टी और लैटराइट मिट्टी पायी जाती है।

दुनिया की ज्यादातर फसलें, फल और सब्जियाँ मिट्टी में होती हैं। लेकिन हर तरह की मिट्टी की एक खासियत होती है और उसमें उसके अनुरुप वाली ही फसलें उगती हैं। हम आपको बताते हैं, आप को कौन सी मिट्टी में कौन सी फसल लेनी चाहिए।

हमारे देश में एक कहावत है–मिट्टी का तन है मिट्टी में मिल जाएगा। इस बात से हमारी ज़िंदगी में मिट्टी की क्या उपयोगिता है ये समझ आ जाता है। कैल्शियम, सोडियम, एल्युमिनियम, मैग्नीशियम, आयरन, क्ले और मिनरल ऑक्साइड के अवयवों से मिलकर बनी मिट्टी वातावरण को संशोधित भी करती है।

घर बनाने से लेकर फसल उगाने तक हमारी ज़िंदगी के लगभग हर काम में मिट्टी कहीं न कहीं ज़रूर होती है। किसी भी क्षेत्र में कौन सी फसल अच्छी तरह से हो सकती है ये बात बहुत हद तक उस क्षेत्र की मिट्टी पर निर्भर करती है। इकोसिस्टम में मिट्टी पौधे की वृद्धि के लिए एक माध्यम के रूप में काम करती है।

मृदा के सम्बन्ध में दो महत्वपूर्ण धारणाएं हैं

पेडालोजी

इसके अंतर्गत मृदा की उत्पत्ति और वर्गीकरण तथा मृदा का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। मृदा का शीघ्र प्रायोगिक उपयोग करना इसका प्रमुख विषय नही है। एक पेडालॉजिस्ट मृदा के प्राकृतिक वातावरण में ही उसका अध्ययन, जाँच तथा वर्गीकरण करता है।

एडेफोलोजी

इसके अनुसार मृदा, पेड़ पौधों के लिए एक प्राकृतिक आवास है। पौधों के उत्पादन सम्बन्धी मृदा के गुणों का अध्ययन ही एडेफोलोजी कहलाता है। इस का मुख्य लक्ष्य आहार एवं फाइबर का उत्पादन करना होता है।

दोमट या जलोढ़ मिट्टी

जलोढ़ मिट्टी भारत में सबसे बड़े क्षेत्र में पाई जाने वाली और सबसे महत्वपूर्ण मिट्टी समूह है। वेबसाइट एग्रीफार्मिंग के मुताबिक, देश के कुल भूमि क्षेत्र का करीब 15 लाख वर्ग किमी या 35 प्रतिशत हिस्से में यही मिट्टी है। देश की लगभग आधी कृषि जलोढ़ मिट्टी पर होती है। जलोढ़ मिट्टी वह मिट्टी होती है जिसे नदियां बहा कर लाती हैं। इस मिट्टी में नाइट्रोजन और पोटाश की मात्रा कम होती है लेकिन फॉस्फोरस और ह्यूमस की अधिकता होती है। जलोढ़ मिट्टी उत्तर भारत के पश्चिम में पंजाब से लेकर सम्पूर्ण उत्तरी विशाल मैदान से चलते हुए गंगा नदी के डेल्टा क्षेत्र तक फैली है। इस मिट्टी की यह खासियत है कि इसमें उवर्रक क्षमता बहुत अच्छी होती है। पुरानी जलोढ़ मिट्टी को बांगर और नई को खादर कहा जाता है।

काली मिट्टी

काली मिट्टी बेसाल्ट चट्टानों (ज्वालामुखीय चट्टानें) के टूटने और इसके लावा के बहने से बनती है। इस मिट्टी को रेगुर मिट्टी और कपास की मिट्टी भी कहा जाता है। इसमें लाइम, आयरन, मैग्नेशियम और पोटाश होते हैं लेकिन फॉस्फोरस, नाइट्रोजन और कार्बनिक पदार्थ इसमें कम होते हैं। इस मिट्टी का काला रंग टिटेनीफेरस मैग्नेटाइट और जीवांश (ह्यूमस) के कारण होता है। यह मिट्टी डेक्कन लावा के रास्ते में पड़ने वाले क्षेत्रों जैसे महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, गुजरात,

यंग प्रोफेशनल, कृषि विज्ञान केंद्र, बसुली, महराजगंज, शोध छात्र मृदा विज्ञान

आंध प्रदेश और तमिलनाडु के कुछ हिस्सों में होती है। गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा और ताप्ती नदियों के किनारों पर यह मिट्टी पाई जाती है।

काली मिट्टी में होने वाली फसलें

इस मिट्टी में होने वाली मुख्य फसल कपास है लेकिन इसके अलावा गन्ना, गेहूँ, ज्वार, सूरजमुखी, अनाज की फसलें, चावल, खट्टे फल, सब्ज़ियां, तंबाखू, मूंगफली, अलसी, बाजरा व तिलहनी फसलें होती हैं।

लाल और पीली मिट्टी

ये मिट्टी ये दक्षिणी पठार की पुरानी मेटामार्फिक चट्टानों के टूटने से बनती है। भारत में यह मिट्टी छत्तीसगढ़, ओडिशा, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग, छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र, पश्चिम बंगाल के उत्तरी पश्चिम जिलों, मेघालय की गारो खासी और जयंतिया के पहाड़ी क्षेत्रों, नागालैंड, राजस्थान में अरावली के पूर्वी क्षेत्र, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और कर्नाटक के कुछ भागों में पाई जाती है। यह मिट्टी कुछ रेतीली होती है और इसमें अम्ल और पोटाश की मात्रा अधिक होती है जबकि इसमें नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम और ह्यूमस की कमी होती है। लाल मिट्टी का लाल रंग आयरन ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण होता है, लेकिन जलयोजित रूप में यह पीली दिखाई देती है।

लाल और पीली मिट्टी में होने वाली फसलें

चावल, गेहूँ, गन्ना, मक्का, मूंगफली, रागी, आलू, तिलहनी व दलहनी फसलें, बाजरा, आम, संतरा जैसे खट्टे फल व कुछ सब्ज़ियों की खेती अच्छी सिंचाई व्यवस्था करके उगाई जा सकती हैं।

लैटेराइट मिट्टी

लैटेराइट मिट्टी पहाड़ियों और ऊंची चट्टानों की चोटी पर बनती है। मानसूनी जलवायु के शुष्क और नम होने का जो परिवर्तन होता है उससे इस मिट्टी को बनने में मदद मिलती है। मिट्टी में अम्ल और आयरन ज़्यादा होता है और ह्यूमस, फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, कैल्शियम की कमी होती है। इस मिट्टी को गहरी लाल लैटेराइट, सफेद लैटेराइट और भूमिगत जलवायी लैटेराइट में बांटा जाता है। लैटेराइट मिट्टी तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, ओडिशा और असम में पाई जाती है।

लैटेराइट मिट्टी में होने वाली फसलें

लैटेराइट मिट्टी ज़्यादा उपजाऊ नहीं होती है लेकिन कपास, चावल, गेहूँ, दलहन, चाय, कॉफी, रबड़, नारियल और काजू की खेती इस मिट्टी में होती है। इस मिट्टी में आयरन की अधिकता होती है इसलिए ईंट बनाने में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

शुष्क मिट्टी

आरावली के पश्चिमी क्षेत्र में पाई जाने वाली शुष्क मिट्टी में रेत की मात्रा अधिक होती है और क्ले की मात्रा कम होती है। सूखे वाले क्षेत्रों में ह्यूमस और मॉइश्चर की कमी कारण भी ये मिट्टी शुष्क हो जाती है। ये मिट्टी क्षारीय होती है और इसमें नमक की मात्रा अधिक व नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है। इस मिट्टी का रंग कुल लाल या भूरा होता है।

शुष्क मिट्टी में होने वाली फसलें

इस मिट्टी में गेहूं, मक्का, दलहन, मक्का, जौ, बाजरा आदि उगाय जा सकता है।

पर्वतीय मिट्टी

यह मिट्टी पहाड़ी क्षेत्रों जैसे जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उतराखण्ड, सिक्किम व अरुणाचल प्रदेश में पाई जाती है। इस मिट्टी में ह्यूमस अधिक मात्रा में होता है लेकिन पोषक तत्व जैसे पोटाश, फॉस्फोरस और चूना कम होता है। इस मिट्टी की प्रकृति अम्लीय होती है। इस मिट्टी में उगाई जाने वाली फसलों को अच्छे उर्वरकों की ज़रूरत होती है।

पर्वतीय मिट्टी में होने वाली फसलें

इस मिट्टी में चाय, मसाले, गेहूं, मक्का, जौ, कॉफी, कुछ फल आदि उगाए जा सकते हैं।●

किसान भाई बीज खरीदें ध्यान से

*डॉ0 समीर कुमार पाण्डेय, डॉ0 सत्यपाल सिंह एवं *डॉ0 ए0डी0 गौतम

अधिक उपज के लिए अच्छी भूमि, पर्याप्त वर्षा या सिंचाई व्यवस्था के साथ–साथ अन्य कृषि आदानों की आवश्यकता रहती है। कृषि आदानों में गुणवत्तायुक्त बीज बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक किसान अच्छा बीज उपयोग करना चाहता है लेकिन जानकारी के अभाव में वह ज्यादा कीमत देकर भी उन्नत बीज प्राप्त नहीं कर पाता है।

उन्नत बीज मुख्यतः दो प्रकार का होता है एक परिशोधित या सुधरी किस्मों का बीज दूसरा संकर या हाइब्रिड बीज। सुधरी किस्मों के बीज में आनुवांषिक गुणों में स्थायित्व अधिक होता है। इन किस्मों को सावधानीपूर्वक उपयोग करने पर कई वर्षों तक उपयोग किया जा सकता है जबकि संकर बीज में आनुवांषिक गुणों में कम स्थायित्व होता है। अर्थात एक बार फसल लेने पर संकर किस्मों का उत्पादन घट जाता है, अतः हर वर्ष नया बीज लेना पड़ता है। प्रस्तुत लेख में अच्छे बीज की विशेषताएं बताई गईं हैं जिन्हे ध्यान में रखकर किसान भाई अगर बीज खरीदें तो अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं।

अच्छे बीज की विषेशताएँ

- अच्छा बीज वह है जो निर्धारित किस्म व गुणों के अनुरूप हो।
- बीज अधिक उपज देने वाला हो।
- बीज की किस्म की उच्च पोषकता के साथ–साथ बाजार व औद्योगिक मांग भी अधिक हो।
- अच्छा बीज भौतिक एवं अनुवांषिक रूप से शुद्ध होना चाहिए।
- बीज की अंकुरण शक्ति अधिक होनी चाहिए।
- एक परिपक्व बीज चमकीला, साफ, एक समान तथा एक जैसे रूप रंग का व पुष्ट हों।

प्रत्येक किसान को अच्छा बीज मिले इसके लिए उन्हें स्वयं कुछ बातों का ध्यान रखना होगा।

- बीज हमेशा प्रमाणित या सत्यचिन्हित ही खरीदें। प्रमाणीकरण के बारे में जानकारी बीज की थैली पर ही लिखी होती है।
- जहाँ तक सम्भव हो सके राज्य बीज निगम, राष्ट्रीय बीज निगम, केन्द्रीय राज्य फार्म निगम या फिर अपने नजदीकी कृषि अनुसंधान केन्द्र से बीज खरीदना चाहिए। इन केन्द्रों से लेने पर आपको खेती की अन्य उपयोगी जानकारी भी मिल जायेंगी या मिलती रहेंगी।
- बीज की दुकान से बिना पैकिंग किया लूज बीज नहीं खरीदना चाहिए। यदि कम बीज की आवश्यकता हो तो दो या अधिक किसान मिलकर बीज की बंद थैली या बैग ही खरीदें।
- कभी भी पुराना बीज नहीं खरीदना चाहिए क्योंकि पुराने बीज का अंकुरण व ओज घट जाता है। हमेशा साफ व उपचारित बीज ही खरीदना चाहिए ताकि बीज भौतिक रूप से शुद्ध व बीजजनित रोगों से मुक्त हो तथा खरीदे गये बीज में मिलावटी कुछ भी न हो।
- बीज की थैली पर लगे टैग या लेबल को भली प्रकार देख लें कि फसल व किस्म/प्रजाति वही है जो हम लेना चाहते हैं, या नहीं।
- बीज की थैली या उस पर लगे लेबल पर बीज की भौतिक शुद्धता, अंकुरण प्रतिशत, उत्पादन वर्ष, पैकिंग तिथि व एक्सपायरी तिथि आदि जानकारी लिखी है या नहीं। इसे भली प्रकार पढ़कर ही लेना

वि.व.वि. (फसल उत्पादन एवं जी0पी0बी0), वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र चन्दौली

चाहिए।

- खरीदी जाने वाली बीज किस्म क्षेत्र की जलवायु, वर्षा, तापक्रम, भूमि आदि के अनुकूल व रोग प्रतिरोधक क्षमता रखने वाली हो, साथ ही साथ उस क्षेत्र में अधिक उपज देने वाली है या नहीं।
- बीज थैली की सिलाई के साथ दो टैग लगे होते हैं एक मोहर या सील लगा टैग व दूसरा टैग जिस संस्थान ने पैदा किया लगा होता है। सील लगा टैग नहीं लगा और सिलाई खुली हो या दुबारा सिलाई की हुई नहीं होनी चाहिए, साथ ही कटी फटी बोरी नहीं होनी चाहिए।
- बीज की थैली या बैग, लेबल तथा बिल, संभालकर रखना चाहिए ताकि बीज से सम्बन्धित धोखेबाजी होने पर इनका उपयोग किया जा सके। यदि बीज विक्रेता खरीदें गये बीज की रसीद या बिल देने से मना करता है तो ऐसी दुकान से बीज न खरीदें।

यदि किसान अपने साथी कृषक, रिश्तेदार या स्वयं का अप्रमाणित बीज किन्तु जानकारी में अच्छा बीज समझकर उपयोग करता है तो भी उसका अंकुरण का परीक्षण अवश्य कर लेना चाहिए। अंकुरण परीक्षण हेतु किसान उपलब्ध बीज में से 50 से 100 बीज लेकर कागज या किसी कपड़े की पोटली में रखकर या बाँधकर स्वच्छ पानी से गीला करते रहते हैं। अंकुरण होने तक उसे गीली अवस्था में रखतें हैं। ध्यान रखना चाहिए कि बीज पानी में डूबे नहीं। उचित तापमान व नमी में 3–4 दिन बाद अंकुरण प्रारम्भ हो जाता है। अंकुरित बीजों की संख्या ज्ञात कर बीज की अंकुरण क्षमता का अनुमान लगाया जा सकता है।

जहाँ तक हो सके कम अंकुरण वाला बीज नहीं खरीदना चाहिए। यदि ऐसा बीज काम में लेना ही हो तो अंकुरण प्रतिशत के अनुसार बुवाई के समय बीज की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

इस प्रकार किसान भाई उन्नत व सही विश्वसनीय बीज प्राप्त कर अपनी उपज बढ़ा सकते हैं क्योंकि अच्छे बीज से ही अधिक उपज की उम्मीद की जा सकती है। अच्छा बीज ही किसान की मेहनत को फलीभूत कर सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि से बीज की अलग–अलग श्रेणियाँ होती हैं। जैसे –

नाभिकीय बीज या न्यूक्लियस सीड

सर्वप्रथम अच्छे गुणों की पहचान होने पर किसी पौधे से जो बीज प्राप्त किया जाता है उसे न्यूक्लियस सीड कहते हैं। प्रायः ये बीज सीमित संख्या में या बहुत ही कम मात्रा में होता है। इस बीज का उपयोग बीज अनुसंधान में लगे व्यक्ति द्वारा बीज के उपयोगी गुणों के स्थायित्व पर शोध के लिए किया जाता है।

प्रजनन या ब्रीडर सीड

यह बीज उन वैज्ञानिकों के पास होता है जो बीज उत्पादन पर शोध कर नया व उन्नत बीज विकसित करते हैं। इस बीज की मात्रा बहुत कम होती है जो प्रायः किसानों के लिए उपलब्ध नहीं हो पाता है।

आधार बीज

यह बीज प्रजनन बीज से पैदा किया जाता है। इस बीज की थैली पर सफेद रंग का लेबल लगा रहता है। इस बीज का उपयोग प्रमाणित बीज तैयार करने में किया जाता है।

प्रमाणित बीज

यह बीज प्रमाणीकरण संख्या की देखरेख में सरकारी फार्म या किसानों के खेतों पर तैयार किया जाता है। प्रमाणित बीज तैयार करने हेतु बुआई के लिए आधार बीज काम में लिया जाता है। फसल अवधि के दौरान अधिकृत वैज्ञानिक दल के निरीक्षण में तैयार किया जाता है।

सत्यचिन्हित बीज

इस प्रकार का बीज आधार या प्रमाणित बीज से तैयार

(शेष पृष्ठ 28 पर)

पर्यावरण संरक्षण आज की आवश्यकता

डॉ0 पूनम सिंह

धरती के चारो तरफ उपलब्ध वातावरण को पर्यावरण तथा धरती पर विद्यमान सौन्दर्य को प्रकृति कहा गया है। प्रकृति के अन्तर्गत जंगल, पेड़, पहाड़, तालाब, समुद्र, बादल, पशु–पक्षी और हरियाली इत्यादि आते हैं और यह भी कहा जाता है कि प्रकृति एवं पर्यावरण का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है तथा यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पर्यावरण प्रकृति की ही देन है। अतः प्रकृति के साथ कोई छेड़–छाड़ का परिणाम पर्यावरण में हमें स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। आज का मानव ही प्रकृति का दुश्मन बन गया है जो प्रकृति के सन्तुलन में हस्तक्षेप करता रहता है और उसे असन्तुलित बना रहा है, जिसके कारण असमय बाढ, सूखा तथा प्रलय जैसी विनाशकारी परिस्थितियाँ पैदा होती रहती है। पर्यावरण से छेड़–छाड़ आज अन्तराष्ट्रीय समस्या बनती जा रही हैं।

यदि इसे समय पर रोका न गया तो यह विकट रुप धारण कर रही है। आज सारा विश्व इस समस्या से पीड़ित है। इसके लिए जनसंख्या का बढ़ना, आधुनिक औद्योगिकीकरण की प्रगति तथा वनस्पतियों और जीव जन्तुओं की संख्या या प्रजातियों के दिन प्रतिदिन होने वाली कमी में पारितन्त्र के असन्तुलन को उत्पन्न किया है।

पर्यावरण से छेड़–छाड़ की समस्या आज अन्तराष्ट्रीय समस्या बन चुकी है। जोकि धीरे–धीरे और विकट रुप धारण कर रही है। इस समस्या को हल करने के लिए पूरे विश्व के वैज्ञानिकगण शोध कर रहें हैं तथा प्रतिवर्ष पर्यावरण दिवस बनाने पर जोर दिया जाता रहा है। आज की समस्या धरती के बढते तापमान वनों के अवैध कटान पर रोक न होना पर्यावरण की समस्या पर चिन्ता बढ़ाती है। जंगलो के पास मिट्टी की कमी को वृक्षों की पत्तियों, झाड़ियों एवं घांस के सड़ने गलने से पूरा किया जा सकता है, किन्तु आज भी जब खेतों व नदियों के आस–पास मिट्टी की कमी होती है तो उसे पूरा करने का कोई उपाय नहीं होता है। कभी कभी तो भयंकर बाढ, भूस्खलन एवं भूक्षरण के कारण हजारों लोग बेघर हो जाते हैं तथा करोड़ों लोगों की जान–माल को नुकसान होता है। पर्यावरण से तात्पर्य सम्पूर्ण वायु, जल तथा भूमि से होता है। पूरे प्रकृति में जैविक तथा भौतिक पर्यावरण की उचित मात्रा में उपस्थित होने पर प्रकृति अपना कार्य संतुलित रूप से करती है। जब इनमें से किसी एक भाग में ज्यादा परिवर्तन हो जाता है, तो पर्यावरण में भी असन्तुलन पैदा हो जाता है। पर्यावरण की स्थिर एवं निश्चित अवस्थाओं में परिवर्तन को ही पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। आज पूरा विश्व प्रदूषण से अस्वस्थ है क्योकि जनसंख्या का बढ़ता दबाव, औद्योगीकरण की प्रगति तथा वनस्पतियों और जीव–जन्तुओं की संख्या व प्रजातियों में दिन–प्रतिदिन होने वाली कमी ने परिक्षेत्र के असन्तुलन को जन्म दिया है। सफलता की चकाचौंध के फलस्वरुप विकास तथा सभ्यता के बढने के साथ–साथ प्रकृति पर मानव का अत्याचार बढ़ता गया है और यही वायु, जल, भूमि आदि को प्रदूषित करके मनुष्य के जीवन के लिए अभिशाप बन गया है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण व प्रकार–

1. प्राकृतिक प्रकोप एवं संकट

2. मानवीय क्रियाओं का कुप्रभाव आथवा मनुष्य का प्रकृति में हस्तक्षेप तथा प्राकृतिक क्षेत्रों का अधिक उपयोग।

कभी–कभी प्राकृतिक प्रकोप एवं संकट भी मानव द्वारा प्रकृति के साथ किये गये अत्याचार के कारण होता है। प्राकृतिक प्रकोप तथा संकट बाढ़, भूस्खलन, तुफान ज्वालामुखी विस्फोट आदि से पूरा का पूरा वातावरण प्रदूषित होता है। इसलिए हमें प्राकृतिक प्रकोप के आने से पूर्व ही सचेत हो जाना चाहिए तथा प्राकृतिक प्रकोपों से होने वाले प्रभावों के लिए जिन साधनों व स्रोतों की आवश्यकता होती है उसे तैयार रखना चाहिए। जिससे तुरन्त संकटग्रस्त इलाकों में मदद दी जा सकें। प्रर्यावरण प्रदूषण रोका नहीं जा सकता

सहायक प्राध्यापक, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

परन्तु मानव द्वारा पर्यावरण पर किये गये अत्याचार को प्रदूषित करने से रोका जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार निम्नलिखित है–

1. वायु प्रदूषण
2. जल प्रदूषण
3. भूमि तथा जैव प्रदूषण
4. जनसंख्या एवं पर्यावरण प्रदूषण
5. तापीय प्रदूषण
6. ध्वनि प्रदूषण

वायु प्रदूषण

जब वायु के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो वायु का भौतिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। इसी प्रक्रिया को वायु प्रदूषण कहते हैं। भिन्न–भिन्न प्रकार के कार्बन कण, धुआ व खनिज तत्वों के कण वातावरण में दिन–प्रतिदिन स्वचालित मशीनों जैसे कार, स्कूटर, रेलगाड़ी, वायुयान, कारखानों की चिमनियों, लकड़ी, कोयला एवं तेल आदि जलने से निकलते हैं, जिससे कई प्रकार कें दुष्प्रभावों की उत्पत्ति होती हैं। जैसे– दम घुटना, सिर दर्द, खांसी, निमोनिया, रक्तचाप, ह्रदय रोग, तपेदिक एवं कैंसर आदि। वायुमण्डल में अनावश्यक एकत्रित हो रही कार्बन डाई आक्साइड, एवं नाइट्रिक आक्साइड वर्षा के समय अभिक्रिया कर कार्बनिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल में परिवर्तित होकर जल को तेजाब बना लेते हैं। फलस्वरुप तेजाबी वर्षा झीलों के पानी, फसलों, पेड़–पौधों व मिट्टी, पेड़ पौधों व मिट्टी को गहरा नुकसान पहुँचाती हैं।

जल प्रदूषण

विश्व धरातल पर 70.9 प्रतिशत जल मिलता हैं। जिसमें 91.3 प्रतिशत महासागर एवं अन्तर्देशीय समुद्रों के रुप में हैं। बाकी 2.7 प्रतिशत ग्लेशियर, भूमिगत वर्षा, शुद्ध जल के रुप में हैं। फिर भी देखा जाए कि मनुष्य एवं जानवर प्यास से मर रहें हैं। जल में खनिज लवण, कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ संयंत्रों का ज्याद से ज्यादा विसर्जित करते रहने से जल प्रदूषित हो जाते हैं। ये परिवर्तन भौतिक रासायनिक एवं जैविक परिवर्तन के रुप में पाये जाते हैं। सीवर के मल–मूत्र अपशिष्ट पदार्थों के नदियों में जाने से जल में आक्सीजन की मात्रा घटती है और सल्फेट, नाइट्रेट एवं क्लोराइड आदि की मात्रा बढ़ती हैं। इसके साथ ही कुछ विषैले तत्व जैसे–सीसा, पारा तथा कैल्शियम इत्यादि भी जल में मिल जाते हैं। जो जन–जीवन के लिए अत्यधिक हानिकारक होते हैं। कृषि विकास के रूप में विभिन्न उर्वरकों का ज्यादा प्रयोग करने से फसल के लिए जरूरी उर्वरक के अलावा बहुत सा भाग पृथ्वी में रह जाता है, जो वर्षा आदि के समय जल के साथ पृथ्वी के अंदर चला जाता है, जो कि भूमिगत जल को प्रदूषित कर देता है। अतिसार, हैजा, पेट के कीड़े, पीलिया, पोलियों, टाइफाइड तथा दातों की बीमारियाँ आदि प्रदूषित जल से ही होती है।

भूमि प्रदूषण

औद्योगिकीकरण, शहरीकरण एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण वनों की कटाई सबसे ज्यादा हो रही है। जिससे जीव जन्तुओं की प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं और हम प्राकृतिक आपदायें जैसे– बाढ़, सूखा, आदि के साथ–साथ वातावरण में घुल रही एक तिहाई कार्बन डाई ऑक्साइड का भी सामना कर रहे हैं। जहाँ पृथ्वी के 70 प्रतिशत भू–भाग क्षेत्र में वन थे, वो आज 16 प्रतिशत ही बचा है।

जनसंख्या एवं पर्यावरण प्रदूषण

आज यदि देखा जाए तो विश्व की जनसंख्या 5.6 से अधिक है। जबकि भारत में जनसंख्या वृद्धि 1991 की जनसंख्या की जनगणना के अनुसार 2.48 प्रतिशत है। जनसंख्या वृद्धि दर पर विश्व की जनसंख्या 2025 में 85 अरब तथा 2050 में 100 अरब हो जाएगी। जनसंख्या और पर्यावरण वृद्धि से विकास की गति में तेजी के साथ–साथ पर्यावरण पर भी पड़ता हैं।

तापीय प्रदूषण

पर्यावरण में प्राकृतिक विकिरण के बढ़ने को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते हैं। विकिरण में यह वृद्धि मनुष्यों द्वारा प्राकृतिक एवं कृत्रिम रुप में रेडियों एक्टिव तत्वों के उत्पाद के फलस्वरूप होती है। रेडियों एक्टिव तत्वों का प्रयोंग परमाणु भट्ठी में ऊर्जा उत्पादन एवं विभिन्न प्रकार के परमाणु हथियारों के बनाने में होता है।

परमाणु भट्ठियों से निकले कचरे आदि में कई रेडियोधर्मी तत्व होते है। जिनके विकिरण से कई प्रकार की दुर्घटनाओं एवं हानियों का जन्म होता है। रेडियों प्रदूषण के रुप के उत्पन्न विकिरण से कैंसर, आसामान्य जन्म जैसे घातक दुष्परिणाम सामने आते हैं। कारखानों उद्योगों, विद्युत उत्पादन केन्द्रों, परमाणु भट्ठियों तथा सीवर आदि के द्वारा निकलने वाले गर्म जल एवं वायु मिलकर तापीय प्रदूषण का सबसे अधिक प्रभाव मछलियों पर पड़ता है, जिससे मछलियों की प्रजातियाँ समाप्त होती जा रही जा रही हैं।

ध्वनि प्रदूषण

अन्य प्रदूषणों की तरह ध्वनि प्रदूषण भी मानव के लिए हानिकारक है। ध्वनि की तीव्रता मापने की ईकाई डेसीबल हैं। एक मिलियन डेसीबल के बीच की ध्वनि को ही मानव सुन सकता है। निर्धारित सीमा से अधिक से मानव शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है, तब उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 45 डेसीबल तक की ध्वनि को कर्णप्रिय एवं मानवीय स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक सुरक्षित बताया है। लेकिन सामान्य रूप से 65 डेसीबल से अधिक की ध्वनि को ध्वनि प्रदूषण माना जाता है। ध्वनि प्रदूषण से उच्च रक्तचाप, कान में दर्द, निचली चमड़ी में जलन, सिरदर्द, स्मरण शक्ति में ह्रास आदि कई शारीरिक रोग एवं चिड़चिडापन, मानसिक तनाव, जी घबराना, निराशा आदि मानसिंक रोग भी उत्पन्न होते हैं।

पर्यावरण संरक्षण के उपाय

पर्यावरण संरक्षण के लिए विश्व स्तर या राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सरकारी, गैरसरकारी संस्थाएं प्रयास कर रही हैं। इस प्रकार विश्व व्यापी समस्या के लिए सभी स्तरों पर प्रयास किये जा रहे हैं। जो निम्न हैं–

अन्तराष्ट्रीय सन्धि तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम

आज सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण की समस्या सुलझाने के उपाय हो रहे है। 1967 के बाहय आन्तरिक सन्धि में व्यवस्था है कि बाहय अन्तरिक्ष में भेजी जाने वाली वस्तुओं से पृथ्वी के पर्यावरण सन्तुलन को खराब नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार 1992 में भी समुद्रीय प्रदूषण से संरक्षण सम्बन्धी व्यवस्था स्थापित की गई थी। अन्तराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण को सन्तुलित रखने हेतु संधियों व अध्यादेशों की व्यवस्था की गई–

- आणविक अस्त्रों के परीक्षणों के निषेध की सन्धि– 1963
- खुले समुद्र पर तेल प्रदूषण से अति सम्बन्धी अधिनियम– 1969
- अन्तराष्ट्रीय महत्व के आकाश, भूमि तथा विशेषकर पानी के आस–पास रहने वाले पक्षियों के आवास स्थान का अधिनियम, 1971
- विश्व की सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक विरासत के संरक्षण से सम्बन्धित अधिनियम 1993
- जोखिम में पेड़ जंगली पेड़ पौधों के अन्तराष्ट्रीय व्यापार का अधिनियम, 1973
- विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग, 1965
- अन्तराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन, 1982

अन्तराष्ट्रीय स्तर पर सहयोग से ही विश्व पर्यावरण का संरक्षण किया जा सकता है और इस काम पर पड़ने वाले कुप्रभावों को रोकना भी अन्तराष्ट्रीय सहयोग से ही सम्भव है। अतः हमे विश्व स्तर पर प्राकृतिक प्रकोप तथा संकट को रोकने तथा बाहय अन्तरिक्ष समुद्र और नदियों के प्रदूषण पर नियन्त्रण करने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण विश्व की भूमि और उनके वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करना आज की आवश्यकता है।

विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग

विश्व स्तर की सन्धियों तथा अधिनियमों को पारित करने पर भी आज पर्यावरण प्रदूषण तथा इसके संरक्षण को विश्वव्यापी समस्या के समाधान हेतु अन्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण पर स्टॉक होम में अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस अवसर पर विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग द्वारा कुछ घोषणाएं की गई थी। पर्यावरण मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास भी करता है। पर्यावरण संरक्षण

सम्बन्धी कर्तव्यों का निर्वाह पेड़ पौधों तथा प्राकृतिक स्रोतो तथा अन्य संसाधनों का संरक्षण वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के लिए आवश्यक है।

भाषा में पर्यावरण संरक्षण

भारत सरकार द्वारा सन 1920 में स्वतन्त्र रुप से पर्यावरण विभाग की स्थापना की गई और 1980 में ही वन संरक्षण अधिनियम बनाया गया। 1981 में वायु प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम लागू किया गया और 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम लागू किया गया। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 को चार अध्याय एवं 26 धाराओं विभाजित किया गया है। मोटर वाहन अधिनियम 1939 का संशोधन करके 1988 में उसमें प्रदूषण सम्बन्धी प्रावधान किया गया है। जिसे संशोधित अधिनियम के रूप में 1 मई 1990 से लागू किया गया। इसके अन्तर्गत ध्वनि एवं वायु प्रदूषण को फैलाना कानूनी तौर से अपराध एवं दण्ड योग्य समझा जायेगा।

विकसित देशों एवं विकासशील देशों ने प्राकृतिक स्रोतों का अधिक उपयोग किया है। जैसे वनों का काटना, वन्य जीवों एवं पक्षियों को नष्ट किया है। इसके परिणामस्वरुप पारिस्थिती में असन्तुलन हो रहा है। विश्वभर में पारिस्थितिकी तन्त्र के विपरीत कार्य हो रहा है। इसलिए सभी पर्यावरण संरक्षण के नियंत्रण के लिए है और इस दिशा में प्रयत्नशील है जिससे पारिस्थितिकी में सन्तुलन रख सकें और पर्यावरण में गुणवत्ता बनी रहे। इसलिए विश्व के सभी राष्ट्रों ने पर्यावरण संरक्षण हेतु विश्व संगठनों की स्थापना की है।

संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम

मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन का आयोजन 1972 में स्टोकहोम में हुआ है। वहीं पर संयुक्त राष्ट्र के अभिक्रम के रुप में संस्था की स्थापना की गई। इसका कार्य पर्यावरण संरक्षरण के विभिन्न देशों की सरकारों से सहयोग को स्थापित करने में वित्तीय तथा तकनीकी सहायता प्रदान करना है। 1975 में स्टॉकहोम में हुए अगले सम्मेलन में इस कार्यक्रम का मूल्यांकन किया गया। उसके आधार पर पृथ्वी पर निरन्तर निगरानी की आवश्यकता को महसूस किया गया तथा पर्यावरण के संरक्षण, विकास एवं सुधार के लिए जितने भी कार्यक्रम और योजनाएं चलाई जा रही है उसे व्यापक प्रचार एवं प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया गया। अक्टूबर 1977 में रूस में इसका एक सम्मेलन हुआ जिसमें पर्यावरण के निरन्तर ह्रास के बारे में विचार विमर्श किया गया और यह सुझाव किया गया कि शिक्षण संस्थाओं द्वारा औपचारिक रुप से पर्यावरण शिक्षा दी जाए, जिसमे मिट्टी, ऊर्जा और पेड़ को लगाने आदि विषयों को पढ़ाने की विषय सामग्री बनाई जाए।

विश्व वन्यजीव कोष

वन्यजीव संरक्षण के विश्वव्यापी कार्यक्रम को प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित करने हेतु 1983 में ड्यूक आफ एडिनवटा की अध्यक्षता में इस संगठन का कार्य आरम्भ हुआ जो अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में प्रयत्नशील है। इस संस्था की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न प्रकार के पेड़ पौधों तथा वन्य जीवों को जीवित रखना तथा भूमि या जल प्रदूषण से वनस्पतियों और वन्य जीवों की रक्षा करना है।

अन्तराष्ट्रीय पशु कल्याण कोष

इस संगठन का उद्देश्य है कि विभिन्न देशों में पशुओं पर अत्याचार करने वाले मानवीय कृत्यों को रोका जाए। इसने अपने प्रयासों के फलस्वरुप कुछ देशों को सफलता भी प्राप्त हुई है।

प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का अन्तराष्ट्रीय कोष

विभिन्न देशों ने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया है। जिसके कारण पर्यावरण में प्रदूषण हुआ और पारिस्थितिकी का सन्तुलन बिगड़ रहा है। इस संगठन की स्थापना सन् 1948 में हुई। इसका मुख्यालय स्विटजरलैण्ड के मार्ज में है। इसका मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकी उपायों का सम्पूर्ण संसार में प्रचार एवं प्रसार करना है जिसमें सभी राष्ट्र इन उपायों तथा पर्यावरण संरक्षण तकनीकी का समुचित उपयोग कर सकें।●

कोरोना महामारी में बने रहें स्वस्थ

पूजा, साधना सिंह, दीप्ति गिरी, रविन्द्र सिंह एवं अशोक कुमार सिंह

कोरोना वायरस महामारी ने हमारे जीवन में ऐसे बदलाव किए हैं जिसकी कल्पना हमने कभी सपने में भी नहीं की थी। कोरोना से पैदा हुई महामारी यानी कोविड–19 का घातक प्रकोप किस दवा से खत्म होगा इस सवाल का जवाब किसी के पास नहीं है इस सवाल का जवाब तलाशने के लिए दुनिया भर के शोधकर्ता मेहनत कर रहे हैं अभी तक केवल एक बात साफ हुई है कि जिन लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है उन पर कोविड–19 का हमला घातक नहीं होता है। प्रतिरोधक क्षमता के कमजोर होने की सबसे बड़ी वजह है आहार में पोषण की कमी इसलिए हमें अपने आहार में ऐसे भोज्य पदार्थों को शामिल करना चाहिए जो हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता को मजबूत करें। मजबूत रोग प्रतिरोधक क्षमता हमें किसी भी वायरस के संक्रमण से बचा सकती है। आज हम बात करते हैं कुछ ऐसे खाद्य पदार्थों के बारे में जिन्हें आहार में शामिल करने से हमारी प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। नवजात शिशु को माँ का पहला गाढ़ा दूध जिसे कोलस्ट्रम कहा जाता है पिलाना आवश्यक है क्योंकि यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में मदद करता है। जो शिशु कोलस्ट्रम व माँ का दूध नहीं पी पाते हैं उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता आजीवन कम रहती है।

खट्टे फलों जैसे नींबू, संतरा, आंवला, करौंदा, अमरूद आदि में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विटामिन सी बहुत जरूरी है क्योंकि यह हमारी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है तथा हानिकारक बैक्टीरिया और वायरस से लड़ने में हमें मदद मिलती है। विटामिन 'सी' ऐन्टीऑक्सीडेंट का कार्य करता है और कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त होने से भी बचाता है।

मसाले हमारे भोजन का स्वाद बढ़ाने के साथ ही हमारी प्रतिरोधक क्षमता को भी मजबूत करते हैं क्योंकि मसालों में ऐन्टीबैक्टीरियल, ऐन्टीइन्फ्लामेटरी एवं ऐन्टीऑक्सीडेंट के गुण पाए जाते हैं। मसाले जैसे हल्दी, काली, मिर्च, जीरा, अजवाइन, मुलेठी, दालचीनी, लौंग एवं अदरक में मौजूद एन्टीवायरल गुण, सर्दी–जुकाम एवं फ्लू से बचाने में मदद करते हैं। हम मसालों को भोजन के अलावा कई तरह से उपयोग कर सकते हैं। जैसे काढ़ा, मसाले वाली चाय एवं चटनी आदि। मसाले वाली चाय के लिए दालचीनी, लौंग काली मिर्च, छोटी इलायची को सुखाकर कूट लें और एक डिब्बे में बंद करके रख लें। जब दूध वाली/नींबू वाली चाय बनाएं तब इस पाउडर को उसमें थोड़ी मात्रा में डाल दें। इसके अलावा हल्दी को गर्म दूध में मिलाकर इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

लहसुन एलिसिन नामक यौगिक से भरपूर होता है जिसका नियमित रूप से सेवन करने पर संक्रमण से दूर रहने की क्षमता बढ़ जाती है। लहसुन को दैनिक आहार में अंकुरित अनाज के साथ शामिल कर सकते हैं। अलसी में अल्फा लिनोलेनिक एसिड और ओमेगा 3 फैटी एसिड होता है जो हमारी प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

कोरोना महामारी में लॉक डाउन की वजह से लोगों का घरों से बाहर निकलना बंद हो गया है। अधिक समय तक घर में रहने से हमारे मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव रहा है। घर में दिन भर बैठे रहने के कारण मोटापे की समस्याएं बढ़ रही है क्योंकि लोगों का घूमना फिरना बंद हो गया है व दैनिक आहार में ऊर्जा का स्तर बढ़ गया है। मोटापा एक ऐसी बीमारी है जिसके कारण कई बीमारियां जैसे मधुमेह, अस्थमा एवं हृदय संबंधी रोग जन्म लेते हैं। मोटापे से बचने के लिए हमें प्रतिदिन योग एवं व्यायाम के साथ–साथ ऐसे भोज्य पदार्थों को अपने आहार में शामिल करना चाहिए जिनमें वसा कम हो।

दैनिक आहार में ऊर्जा की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि नियमानुसार अधिक ऊर्जा युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन कम किया जाए व कम

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

उपयोग से बचें	संयमित मात्रा में उपयोग करें	प्रचुर मात्रा में उपयोग करें
चीनी, गुड़, टॉफी, जैम, जैली एवं चॉकलेट।	अनाज जैसे– गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, रागी आदि।	हरी सब्जियाँ
बेकरी उत्पाद जैसे– केक, पेस्ट्रीज, पेटीज, बिस्किट आदि।	दालें।	अंकुरित अनाज व दालें, खमीरीकृत खाद्य पदार्थ
मिठाइयां जैसे–पेड़ा, बर्फी, मिल्क केक, श्रीखण्ड एवं आइसक्रीम।	बिना मलाई वाला दूध।	वसा रहित दूध का दही व मट्ठा
एल्कोहल, एल्कोहलिक पेय पदार्थ और सभी तरह की सॉफ्ट ड्रिंक।	सब्जियाँ जैसे– आलू, शकरकन्द, सूरन, अरबी, गाजर एवं चुकन्दर	दालों व सब्जियों का पतला सूप
वनस्पति घी, घी, मलाई, मक्खन।	–	फल, अमरूद, पपीता, करौंदा, संतरा, अंगूर आदि
काजू, मूँगफली	बादाम, किशमिश	नींबू पानी

ऊर्जा युक्त भोज्य पदार्थों के सेवन को प्राथमिकता दी जाय।

इन सभी भोज्य पदार्थों के अलावा हमें संतुलित आहार भी लेना चाहिए क्योंकि स्वस्थ शरीर के लिए संतुलित आहार बहुत जरूरी है। सन्तुलित आहार में एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन अनाज, दालें, फल, सब्जियाँ, दूध व दूध से बने उत्पाद आदि शामिल करना चाहिए। संतुलित आहार हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण है इससे यह सुनिश्चित होता है की प्रतिरक्षा प्रणाली के कुशल कार्य के लिए आवश्यक विटामिन, खनिज व अन्य पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में शरीर को मिल रहे हैं।●

(पृष्ठ 22 का शेष)

सारिणी–1

बीज उपचार हेतु काम में लिए जाने वाले सामान्य फफूँदनाशी, कीटनाशी, एवं जैव उर्वरक

रसायन/जैव उर्वरक	मात्रा प्रति किग्रा0 बीज	उपचारित की जाने वाली फसलें	उपयोग/कार्य
थीरम	3 ग्राम	बाजरा, मक्का, ज्वार, कपास, गेहूँ, धान, दलहन	बीजजनित फफूँद रोगों से सुरक्षा
मेन्कोजेब	3 ग्राम	सरसों, गेहूँ	सफेद रोटी रस्ट से बचाव
एग्रोन एस0 डी0	4 ग्राम	मक्का, सरसों	बीजजनित फफूँद रोगों से सुरक्षा
कार्बेन्डाजिम	1 से 2 ग्राम	मूँगफली, सोयाबीन, चना, मूँग, अरहर, मसूर	उकठा एवं दीमक नियंत्रण हेतु
क्लोरपायरीफॉस	5–6 मिली	मूँगफली, चना, गेहूँ, जौ	जड़गलन रोग से सुरक्षा
रायजोबियम कल्चर	3 पैकेट प्रति हेक्टेयर	दलहनी फसलें	नत्रजन स्थिरीकरण
एजोटोबैक्टर कल्चर	3 पैकेट प्रति हेक्टेयर	अनाज वाली फसलें	नत्रजन स्थिरीकरण
पी0एस0बी0 कल्चर	3 पैकेट प्रति हेक्टेयर	सभी फसलें	फास्फोरस उपलब्धता बढ़ाने हेतु
मेक्सपॉवर मल्टी न्यूट्रिएंट	2–3 मिली	सभी फसलें	समुचित पौधे के विकास हेतु
ट्राइकोडर्मा	1 किग्रा + 75–100 किग्रा0 सड़ी गोबर की खाद एवं 5–6 ग्राम/किग्रा0 बीज शोधन	सभी फसलें	भूमिगत फफूँद रोगों से बचाव एवं उकठा, तनाव, जड़गलन हेतु

किया जाता है। बीज की गुणवत्ता संबन्धित जिम्मेदारी उत्पादक संस्था या कम्पनी की होती है।

खरीदा गया बीज या स्वयं का बीज उपचारित नहीं हो तो किसान द्वारा स्वयं बीज उपचार कर भूमिजनित रोगों–कीड़ों को नियंत्रित किया जा सकता है। बीज उपचार उपयोगी कुछ रसायन एवं जैव उर्वरक तालिका–1 में दर्शाए गए हैं। इस प्रकार किसान भाई बीज खरीदकर एवं उपयोग में सावधानी रखकर तथा स्वयं बीज उपचार कर रोगरहित अच्छी फसल लेकर अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।●

गौपालन जैविक खेती का सुदृढ़ आधार

डॉ. एस.के. सिंह, डॉ. एस.एन. लाल, डॉ. एन. रघुवंशी और डॉ. ए.के. सिंह

मनुष्य के लिए स्वस्थ जीवन सर्वोपरि है और यह संभव है केवल स्वस्थ खाद्य–पदार्थों के सेवन एवं स्वस्थ पर्यावरण से। परंतु आज के परिवेश में यह कहाँ तक संभव है जहां प्रत्येक खाद्यान्न, फल और सब्जियां सभी रसायनिक खादों व अंधाधुंध कीटनाशकों के प्रयोग से पैदा की जाती है। अनुसंधानों से सैकड़ों अधिक उत्पादन की प्रजातियाँ तो विकसित की गई हैं परंतु कभी यह सोचा गया कि क्या इन में विद्यमान पौष्टिक तत्वों की भी वृद्धि हुई है? ऐसे भोजन से क्या लाभ जिसे हम भरपेट खाकर भी शरीर के लिए आवश्यक ऊर्जा ना दे सके। यह एक अति गंभीर विषय है और आवश्यकता है हम सभी को इसके प्रति सजगता की। इस क्षेत्र में समाज में धीरे–धीरे जागरूकता आ रही है। इसीलिए जैविक खेती का शुभारम्भ हुआ है। जैविक खेती का अर्थ है– बिना किसी रासायनिक खाद एवं कीटनाशक के उपयोग से फसलों का उत्पादन। इसके लिए कंपोस्ट के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जैविक खादों के उत्पादन की तकनीकों का प्रयोग कर हम अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं। इस दिशा में वर्मी–कंपोस्ट (केचुंआ खाद) काफी प्रचलित हो रही है। गाय के मल–मूत्र एवं अपशिष्ट पदार्थो से भी अनेको प्रकार की जैविक खाद बनायी जा सकती है जो कि जैविक कृषि के लिए वरदान होगी।

गाय के गोबर से जैविक खाद

गाय के गोबर को गोमय भी कहा जाता है। वैदिक काल से गाय को पवित्रतम तथा इसके गोबर एवं मूत्र का प्रयोग सभी शुभ कार्य में किया जा रहा है। इसके रसायनिक अपघटकों में जल 82.4 प्रतिशत, कार्बनिक तत्व 18 प्रतिशत, नाइट्रोजन 6.3 प्रतिशत, फास्फोरस 0.18 प्रतिशत, खनिज 3.6 प्रतिशत, पोटाश 0.18 प्रतिशत तथा पोटेशियम ऑक्साइड 1.05 प्रतिशत तक होती है। इसमें निहित कार्बनिक तत्व जीवाणु द्वारा अपघटित नाइट्रोजन एवं फास्फोरस बनाते हैं जो हमारी भूमि की उर्वरा शक्ति की वृद्धि में सक्षम है। इस के गोबर से अन्य जैविक खादें भी बनाई जा सकती है

कंपोस्ट खाद

यह खाद बनाने के लिये जमीन में चौकोर गहरा गड्ढा खोदकर गोबर, कूड़ा–करकट तथा घास–फूस भरकर ढंक दिया जाता है। इस विधि से 3 महीने में जैविक खाद उपयोग हेतु तैयार हो जाती है ।

स्लरी खाद

यह जैविक खाद गोबर गैस के संयंत्र से निकले हुए मिश्रण को सुखाकर 5 प्रतिशत नीम की खली मिलाकर तैयार की जाती है इसे स्लरी खाद कहते हैं।

वर्मी खाद

एक बड़े हौज में गाय का गोबर, कूड़ा–करकट तथा घास–फूस आदि के साथ खाद के केचुए डालकर ढंक दिया जाता है। कुछ समय बाद जैविक खाद ऊपरी सतह पर आ जाती है। इसे निकालकर उपयोग किया जाता है।

अमृत खाद

10 किलो गोबर को 10 किलो को गौ–मूत्र तथा पानी एवं 500 ग्राम गुड़ के मिश्रण को बड़े मिट्टी के बर्तन में ढककर जमीन में गाड़ दिया जाता है। जैविक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरु 10 दिन में यह जैविक खाद तैयार हो जाती है जो कि फसलों के लिए अमृत है। हाल ही में नोडप ने गाय के गोबर से जैविक खाद बनाने की तकनीक विकसित की है। इसमें 1 किग्रा गोबर में 16 किग्रा कूड़ा, 16 किग्रा मिट्टी तथा 7 लीटर पानी के संयोग से 40 किग्रा जैविक खाद प्राप्त होती है

वैज्ञानिक, पशु विज्ञान, के.वी.के., बेलीपार, गोरखपुर, वैज्ञानिक, पशु विज्ञान, प्रसार निदेशालय, वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के., जौनपुर–2, वैज्ञानिक, के.वी.के., वाराणसी, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, (उ. प्र.)–224229.

जो कि रसायनिक खादों की मूल की तुलना में अत्यंत सस्ती एवं प्रभावशाली है।

त्वरित जैविक कंपोस्ट (सी.पी.पी.)

यह जैविक खाद बीज दुधारू गाय के ताजा गोबर से 50 से 80 दिनों में तैयार की जाती है। इसकी विशेषता यह है कि 500 ग्राम खाद की मात्रा एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होती है। इसका उपयोग बीज शोधन (200 ग्राम प्रति किलो बीज के लिए), नर्सरी में रूटिंग के लिए, शाक–भाजी की फसलों में छिड़काव के लिए, पेड़ो की छंटाई के बाद पेस्ट के रूप में तथा अन्य जैविक खाद बनाने के लिए सूक्ष्म जैविक क्रियाशीलता की वृद्धि के लिए भी किया जाता है।

भूमि संस्कार

कृषि भूमि को जीवाणुपूर्ण बनाने के लिए कृषि संस्कार अत्यंत उपयोगी है। जिसने 15 किग्रा. बरगद के पेड़ के नीचे की मिट्टी को 10 किग्रा. गोबर के साथ में छिड़काव करना चाहिए। इससे कृषि भूमि जीवित होकर उत्पादन में वृद्धि होती है।

अमृत पानी

यह कृषि के लिए अमृत तुल्य हैं। इसे तैयार करने के लिए 10 किग्रा. गाय के गोबर में 250 ग्राम गाय का घी तथा 500 ग्राम शहद मिलाकर मिश्रण को 30 मिनट तक डण्डे से अच्छी तरह मिला लेते हैं। इस मिश्रण को 200 लीटर पानी में एक किग्रा शहद या पुराने गुड़ के साथ मिला लें। यही अमृत पानी कहलाता है। इसका उपयोग भूमि संस्कार वाले कृषि क्षेत्र में वर्षा या सिंचाई के पानी के साथ करना चाहिए ।यह एक उत्तम जैविक खाद का कार्य करती है।

गौ–मूत्र से जैविक खाद का उत्पादन

वेदों में गौ–मूत्र को गंगाजल से भी पवित्र माना गया है। यह मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से भी सर्वाधिक उपयोगी है। आजकल शरीर के जटिलतम रोग, जैसे कैंसर एवं एड्स का भी उपचार इसी से प्रारम्भ कर दिया गया है। इसके रसायनिक संगठनों में सोडियम, क्लोराइड, पोटेशियम, मैग्निशियम, क्लोरीन इत्यादि पाए जाते है। इसके अतिरिक्त इसमें नाइट्रोजन युक्त तत्त्व प्रचुर मात्रा में है। इसकी रसायनिक संरचना स्वयं सिद्ध करती है कि यह गौ–मूत्र हमारे कृषि के लिए कितना उपयोगी है। एक लीटर गौ–मूत्र को 25 लीटर पानी में मिलाकर फसलों पर छिड़काव रासायनिक खाद से कई गुना अधिक प्रभाशाली है ।

गौ–मूत्र से बीज संस्कार

बीजों को बोने से पहले गौ–मूत्र में तीन घण्टे भिगोकर छाया में सुखाकर बोने से अंकुरण की प्रतिशत मात्रा अधिक एवं फसल पर योग का प्रभाव कम हो जाता है।

गौ–मूत्र से विभिन्न प्राकृतिक कीटनाशकों का उत्पादन

गौ–मूत्र में रोग कारक कीटाणुओं को नष्ट करने का अद्‌भुत गुण विद्यमान है। इससे अनेकों प्रकार के प्राकृतिक कीटनाशक तैयार किए जा सकते हैं–

1. गौ–मूत्र में नीम का तेल, आकड़ा, तुलसी के पत्ते तथा धनिया के पत्ते मिला लें। यह एक अच्छा कीटनाशक है जो लगभग सभी फसलों के लिए लाभदायक है।
2. गौ–मूत्र में आक के पत्ते, तुलसी तथा धतूरा आदि को मिलाकर भी अच्छा कीटनाशक तैयार किया जा सकता है।
3. 10 लीटर गौ–मूत्र में 2 कि.ग्रा. नीम के पत्ते मिलाकर तांबे के बर्तन में उबाल लें। इससे 5 कि. ग्रा. कीटनाशक तैयार हो जाता है उपयोग के लिए इसमें 100 गुना पानी मिला लेना चाहिए।
4. गौ–मूत्र एवं पानी का 1:6 का अनुपात दीमक नियंत्रण के लिए अत्यंत प्रभावशाली होता है।
5. एक लीटर गौ–मूत्र में 25 मि.ली. मेन्था ऑयल का 50 लीटर पानी में तैयार घोल अंगूर की फसल के सभी का कवक लोगों के लिए रामबाण है। इसका छिड़काव अन्य फसलों के कवक रोगों के लिए भी सफलतापूर्वक किया जा सकता है।●

पशुओं में दूध उतारने हेतु ऑक्सीटोसिन का प्रयोग हानिकारक

डॉ. एस. एन. लाल, डॉ. एस. के. सिंह

पशुओं में दूध उतारने हेतु ऑक्सीटोसिन हार्मोन का प्रयोग पशुओं एवं मनुष्यों दोनों के लिये अत्यन्त हानिकारक है। ऑक्सीटोसिन जो दूध उतारने के इंजेक्शन के नाम से प्रचलित है, शरीर का एक आवश्यक हार्मोन है, जो कि शरीर में ही एक ग्रन्थि से साबित होता है। इसका उपयोग व्यवहारिक रुप से विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे – पशु के प्रसव के दौरान, प्रजनन एवं अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धित विकारों में पशु चिकित्सक द्वारा किया जाता है, परन्तु आजकल पशुपालक पशुओं के स्वतः दूध न उतरने तथा अधिक दूध प्राप्ति के लिये ऑक्सीटोसिन का उपयोग अंधा–धुंध तरीके से कर रहे है, जो कि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से पशुओं एवं पशुपालकों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है, जिससे पशुपालक पूरी तरह से अनिभिज्ञ है। ऑक्सीटोसिन एक ही समय पर अपने एवं गर्भाशय दोनों पर असर करता है, जिससे दूध उतरने की प्रक्रिया तो हो जाती है, परन्तु पशु के प्रजनन तन्त्र पर बुरा प्रभाव पड़ता है। लगातार ऑक्सीटोसिन के प्रयोग से गर्भित पशु में गर्भपात हो सकता है एवं उसकी बच्चेदानी बाहर निकल सकती है। ऑक्सीटोसिन के इंजेक्शन लगातार लगाने से सम्बन्धित पशु की आदत पड़ जाती है, जिसके बिना दूध उतारना कठिन हो जाता है। लगातार ऑक्सीटोसिन इन्जेक्शन से पशु के शरीर में प्रजनन सम्बन्धी अन्य हारमोनो का सन्तुलन बिगड़ जाता है, जिससे बार–बार पशु को गर्मी में आने के बाद प्राकृतिक अथवा कृत्रिम गर्भाधान करने पर भी गर्भधारण न करना एक समस्या बन जाती है। वैज्ञानिको ने शोध से प्रमाणित किया है, दूध उतारने के लिये लगाया गया ऑक्सीटोसिन सूक्ष्म मात्रा में दूध में भी निकल आता है, ऐसे दूध का उपयोग करने वाले मनुष्यों के प्रजनन एवं स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

ऑक्सीटोसिन के कुप्रभावों से बचने के लिये पशु का स्वास्थ्य परीक्षण पशु चिकित्सक से नियमित रूप से करवाना चाहिये। पशु को संतुलित आहार उपयुक्त मात्रा में दे ताकि पशु शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रहे। दूध दुहने के लिये प्रतिदिन एक निश्चित समय निर्धारित कर लेना चाहिये। ऐसा करने से यह पशु की आदत में शामिल हो जाता है। जहाँ तक हो सके दूध निकालने एवं पशु की देखरेख करने में लगे हुये व्यक्तियों को बार–बार नहीं बदलना चाहिये। दूध निकालने के समय पशु को नियमित रुप से कुछ दाना खाने के लिये देना चाहिये, इससे दूध निकालने की प्रक्रिया आसानी से सम्पन्न हो जाती है। दूध निकालने के समय पशु को शान्त एवं सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिये, अन्यथा अजीब तरह की ध्वनि सुनकर तथा अपरिचित दृश्यों को देखकर पशु भड़क सकता है, जिससे दूध उतरने की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। इसके अलावा कुछ औषधियाँ भी है, जिनको देने से पशु को मानसिक शान्ति मिलती है, तथा उसका ध्यान दूध उतारने की तरफ आ जाता है, परन्तु इसका प्रयोग चिकित्सक की सलाह से ही करना चाहिये। संसार के विकसित देशों में ऑक्सीटोसिन के प्रयोग को पूरी तरह से प्रतिबन्धित कर दिया गया है, लेकिन दुर्भाग्य से भारतवर्ष में यह अभी भी प्रयुक्त हो रहा है। पशुपालकों को चाहिये कि ऑक्सीटोसिन का प्रयोग (यदि आवश्यक हो) बड़ी ही

वैज्ञानिक, पशु विज्ञान, प्रसार निदेशालय, वैज्ञानिक, पशु विज्ञान, के.वी.के., बेलीपार, गोरखपुर, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ. प्र.)–224229.

सजगता से एवं पशु चिकित्सक की सलाह से ही करें; जिससे वह ऑक्सीटोसिन से होने वाली पशु स्वस्थ्य एवं आर्थिक हानि से स्वयं को बचा सके।

पशुओं में दूध उतारने के लिए ऑक्सीटोसिन की बजाए कुछ व्यवहारिक बातों का ध्यान देना चाहिए। सर्वप्रथम पशुओं को संतुलित आहार खिलाना चाहिए जिसमें दाना मिश्रण व खनिज लवण के अलावा दो हिस्सा हरा चारा एक हिस्सा भूसा अवश्य होना चाहिए। दुहाई का समय निश्चित होना चाहिए एक दुहाई से दूसरे दुहाई के बीच में 12 घंटे का अंतराल अवश्य होना चाहिए। जहां तक हो सके पशुओं को शलजम, गाजर, सहजन की पत्ती, बबूल की फली, सफेद मूसली व शतावर आहार में देना चाहिए। दुहाई के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पशु जुगाली करने की अवस्था में रहे अर्थात दूध दुहने के एक घंटा पहले पशु को आहार खिला देना चाहिए। पशुशाला साफ–सुथरी एवं दुर्गंध रहित होनी चाहिए जलजमाव की समस्या भी नहीं होनी चाहिए जिससे पशुशाला मच्छरों से मुक्त हो सके। दूध निकालते समय पशु को प्यार से सहलाना चाहिए एवं नजदीक में किसी प्रकार का शोरगुल भी नहीं होना चाहिए। यदि किसी कारणवश पशु में दूध नहीं निकल रहा है निकट के पशु चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।●

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये : खेती में आगे बढ़िये

- फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, मत्स्य तथा पशुपालन विषय की वैज्ञानिक जानकारी देने वाली लोकप्रिय मासिक पत्रिका पूर्वाञ्चल खेती। चाहे प्रगतिशील किसान हों, बागवान हों या मत्स्य/पशुपालक, अनुसंधान/प्रसार कार्यकर्ता अथवा कृषि संकाय के छात्र तथा साथ ही साथ सभी के लिये उपयोगी आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, की हिन्दी मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती।
- पूर्वाञ्चल खेती की सदस्यता शुल्क रू0 270.00 मात्र (किसानों, छात्रों एवं लेखकों के लिए रू0 220.00 मात्र) है। जो निदेशक प्रसार, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या को मनीआर्डर/नकद भुगतान द्वारा प्रेषित किया जाना चाहिए। सदस्यता शुल्क भेजते समय अपना नाम व पता स्पष्ट अक्षरों में लिखना न भूलें। आपका सुझाव उत्तरोत्तर सुधार हेतु प्रार्थनीय है।

कृषि लागत कम करने हेतु सुझाव

- ऊसर व बंजर भूमि का उपचार कर कृषि योग्य बनाकर खेती के प्रयोग में लाएं।
- सिंचाई जल उपयोग में बृद्धि हेतु ड्रिप एवं स्प्रिकलर पद्धति पर बढ़ावा देना तथा इसके प्रयोग पर प्रशिक्षण प्रदान कर इसे बढाने तथा क्रान्तिक अवस्थाओं पर उचित मात्रा में सिंचाई करें।
- कृषि लागत में कमी हेतु कृषि यन्त्रीकरण का प्रयोग कर जीरो टिलेज, सीडड्रिल व कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ भूसा बनाने वाली मशीन के प्रयोग पर बल दिया जाय।
- मृदा स्वास्थ्य बढानें के लिए जैविक उर्वरक, कार्बनिक खाद, फसल अवशेषों का प्रबन्ध व मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अनुसार उर्वरकों के संतुलित प्रयोग पर बल दिया जाना जिससे उत्पादन बढ़नें के साथ लागत में कमी आये।

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) सीधे बोये धान में यदि पहली निराई न की गयी हो तो निराई अवश्य करें। इसके बाद जो फसल एक माह की हो गयी हो, उसमें 30 किग्रा नत्रजन प्रति हेक्टेयर की दर से टापड्रेसिंग करें।

(2) उर्द, मूँग तथा अरहर के पौधे घने हों तो निराई करते समय बिरलीकरण कर दें। कतार से बोयी गयी फसल में अरहर की पौधों से पौधों की दूरी 20–24 सेमी रखें।

सब्जी एवं उद्यान में

डॉ. एस. के. वर्मा
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष

(1) जाड़े एवं बसन्त वाली टमाटर तथा बैंगन की पौध इस माह के प्रथम एवं दूसरे पखवारे में डालें।

(2) मुख्य समय में तैयार होने वाली गोभी की पौध माह के प्रथम सप्ताह में डालें तथा पिछैती एवं मध्यम किस्मों की पौध माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(3) अगेती पात गोभी की पौध इस माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(4) परवल के तने की रोपाई 1.5 गुणे 1 मीटर के फासले पर 2700 कटिंग प्रति एकड़ के हिसाब से इस माह में भी कर सकते हैं। प्रत्येक कटिंग 90 सेमी की होनी चाहिये।

(5) नये बाग लगाने का यह सर्वोत्तम माह है। पहले से तैयार गड्ढो में पौधों की रोपाई करें। यदि पहले से गड्ढे नहीं तैयार किये गये हैं तो आम, आँवला, बेर के लिये 75 सेमी व्यास तथा इतने ही गहराई के गड्ढे खोदकर खाद एवं मिट्टी की समान मात्रा भरकर पौधे रोपित कर सकते हैं।

(6) पुराने बागों की एक अच्छी जुताई कर दें, जिससे गिरी हुई पत्तियाँ एवं अन्य कूड़ा करकट सड़ सकें और खर–पतवार नष्ट हो सके।

(7) आम, अमरूद, बेर, आँवला, कटहल आदि का प्रबन्ध कलम चश्मा विधि द्वारा इस माह के प्रथम सप्ताह तक पूरा कर लें।

फसल सुरक्षा

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) धान में खैरा रोग के नियंत्रण के लिए 5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 20 किग्रा यूरिया अथवा 2.5 किग्रा बुझे हुए चूने को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(2) धान की फसल में कीटों के नियंत्रण के लिए फास्फेमेडान 250–300 मिली प्रति हेक्टेयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(3) मक्का में तुलसिता रोग के नियंत्रण के लिए जिंक कार्बोमेट रसायन 2 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(4) तिलहनी फसलों में पर्ण चित्ती तथा जीवाणु झुलसा रोग नियंत्रण के लिये जिंक कार्वामेट रसायन 2 किग्रा तथा स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम अथवा एग्रीमाइसीन 100 (75 ग्राम) को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(5) धान में तना छेदक के नियंत्रण के लिये कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 3–5 सेमी खड़े पानी में 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में बिखेर दें अथवा फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. आर.आर. सिंह, प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

(6) हरा, सफेद एवं भूरा फुदका के नियंत्रण के लिये फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(7) धान में जीवाणु झुलसा बीमारी लगने पर खेत का पानी निकाल कर 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व कापर आक्सीक्लोराइड 500 ग्राम को 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से 2–3 छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर करें।

(8) धान में झोंका रोग नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 1 किग्रा या एडिफेनफास 1 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(9) बैंगन की फसल को तना व फलीबेधक कीट हानि पहुँचाता है। रोगग्रस्त भाग को काट देना चाहिये तथा प्रभावित कटे भाग को जला देना चाहिये। फेनवालरेट 20 ईसी 750 मिली या डिलमेथरिन 28 ईसी 450 मिली या साइपरमेथरीन 10 ईसी 750 मिली को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. एस.एन. लाल
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) भैंसों में ब्यांत का समय चल रहा है अतः नवजात पड़वा/पड़िया को भैंस का प्रथम दूध खींस तीन दिन तक अवश्य पिलाएं। इसमें बच्चों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव की सम्भावना बढ़ जाती है।

(2) पशुओं को जहरी बुखार, लंगड़िया तथा गलाघोंटू बीमारी का टीका यदि अभी तक न लगा हो तो इस माह में अवश्य लगवा दें।

(3) मुर्गियों से अधिक अण्डा व मांस उत्पादन के लिए उन्हें बहुत दिनों का पुराना दाना नहीं देना चाहिए, क्योंकि बरसात के मौसम में दानें में फफूँदी लगने की सम्भावना अधिक रहती है।

(4) गर्भवती भैंस को पौष्टिक दलहनी चारा के अतिरिक्त खनिज लवण एवं विटामिन युक्त आहार दें।

(5) ब्रायलर मुर्गियों के प्रबन्धन पर विशेष ध्यान रखें। बरसात में बिछावन गीला होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः समय–समय पर गुड़ाई करके बिछावन गीला होने से बचायें। ●

लेखकों से अनुरोध

- लेख भेजने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आप पूर्वांचल खेती की वार्षिक सदस्यता ग्रहण कर लिए हैं, जो रूपया दौ सौ बीस (220.00) मात्र ही देय होगा। एक लेख में जितने भी लेखक होंगे सभी की सदस्यता अनिवार्य होगी।
- लेख भेजते समय पूर्वांचल खेती की सदस्य संख्या तथा सदस्यता अवधि सभी लेखकों को लेख के ऊपर लिखना अनिवार्य होगा।
- लेख फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, गृह विज्ञान, मत्स्य अथवा पशुपालन आदि विषयों पर आधारित हो।
- लेख दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप हो।
- लेख आकर्षक एवं अपने में ठोस हो।
- लेख आंकड़े से भरपूर हो।
- सम्बन्धित माह तथा मौसम की जानकारी से छः माह पूर्व प्रेषित हो।

प्रधान सम्पादक

संतुलित उर्वरक का प्रयोग

लगातार फसल उगाने से मृदा के स्वास्थ्य में हो रही गिरावट के कारण कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता में स्थिरता की स्थिति हो गयी है। समय रहते खेत की मिट्टी की दशा को सुधारने एवं उर्वरकों का संतुलित मात्रा में प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि किसान भाई अपने खेत की मिट्टी की जाँच करवाने के पश्चात संस्तुत मात्रा में संतुलित उर्वरक का प्रयोग करें तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य बनवायें। फसल अवशेष को न जलाएं उसका प्रबन्ध कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाएं। खेत को खाली न छोड़ें बल्कि हरी खाद हेतु सनई व ढैंचा पलटकर हरी खाद बनायें। जीवांशिक खादों का अधिक से अधिक प्रयोग कर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाने पर बल दें।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : मोथा घास का निदान कैसे करें?

(श्री राजेश यादव, ग्राम आशापुर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : मोथा घास के नियंत्रण के लिये खेत की ग्रीष्मकालीन 2–3 बार जुताई करें। खरीफ में धान उगाने के लिये लेवा करके अंकुरित बीज बोयें अथवा पौध रोपें। धान, मक्का, गन्ना, ज्वार तथा बाजरा की शुद्ध फसल में संस्तुति के अनुसार 2,4– डी शाकनाशी का प्रयोग करें। वर्षा और ग्रीष्मकाल में सघन उगने वाली और जल्दी बढ़ने वाली फसलें लगाना अच्छा होगा। प्रत्येक फसल में बुवाई के बाद 15–20 दिन की अवस्था पर पहली निराई तथा इतने ही अन्तराल पर दूसरी निराई अवश्य करें। बाद की निराई आवश्यकतानुसार करें। निराई–गुड़ाई के समय इस घास को समूल निकालकर नष्ट कर दें। बिरल या अधिक फासले पर लगाई जाने वाली फसलों में गन्ने की पत्ती, पुआल अथवा जलकुम्भी बिछाने से बहुत अच्छे परिणाम मिले हैं। गेहूँ, धान आदि फसल की एक माह की अवस्था पर वासाग्रान 2 लीटर प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मोथा के साथ–साथ अन्य दूसरी घासें भी नष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न : बैंगन की पौध की कीड़े पत्तियाँ एवं डण्ठल काट रहें हैं, इसकी रोकथाम कैसे करें?

(श्री राकेश कुमार पाण्डेय, ग्राम चित्राखोर, जनपद बस्ती)

उत्तर : बैंगन में तना छेदक एवं फल छेदक कीड़े लगे हैं। इस कीड़े के आक्रमण करने के पहले ही उपाय करना चाहिये, क्योंकि यह कीड़ा जब अन्दर घुस जाता है तो दवा असर नहीं करती है। अतः कीड़े लगने से पहले ही छिड़काव करना चाहिये। इसके नियंत्रण के लिये 2 मिली मैलाथियान को एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिये अथवा फास्फेमिडान 100 ईसी 250 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

प्रश्न : मुर्गीपालन प्रारम्भ करना चाहते हैं, कैसे करें?

(श्री मुख्तार अहमद, कूड़ेमार, जनपद अयोध्या)

उत्तर : मुर्गीपालन दो प्रकार से किया जाता है एक अण्डा उत्पादन के लिये, दूसरा मांस (ब्रायलर) उत्पादन। अण्डा उत्पादन हेतु सबसे अच्छी नस्ल ह्वाइट लेगहार्न पायी जाती है जो वर्ष भर में लगभग 280–300 अण्डे का उत्पादन करती है। इसके लिये बिछावन पद्धति और केज पद्धति से मुर्गियों को पाला जाता है। दूसरा ब्रायलर पालन जिसे पूर्वांचल में बहुत से किसानों द्वारा किया जा रहा है।

यह बहुत कम समय में अर्थात 25–30 दिन में 1200–1500 ग्राम वजन तक हो जाता है जिसे बाजार के आवश्यकता अनुसार छोटा अथवा बड़ा करके बेच दिया जाता है। ब्रायलर पालन के लिये जहाँ मुर्गी घर बनाना है वह जगह ऊँचा होना चाहिये, पानी न रूकता हो, बाजार के नजदीक तथा आने जाने के लिय सड़क होना आवश्यक है। एक ब्रायलर के लिए एक वर्गफुट स्थान की जरूरत पड़ती है जिसे अच्छे प्रबन्धन एवं संतुलित आहार खिलाकर कम समय में अधित लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अधिक जानकारी के लिये आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र पर आकर सम्पर्क कर सकते हैं। ●

पंजीयन संख्या - 54461/91

डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित